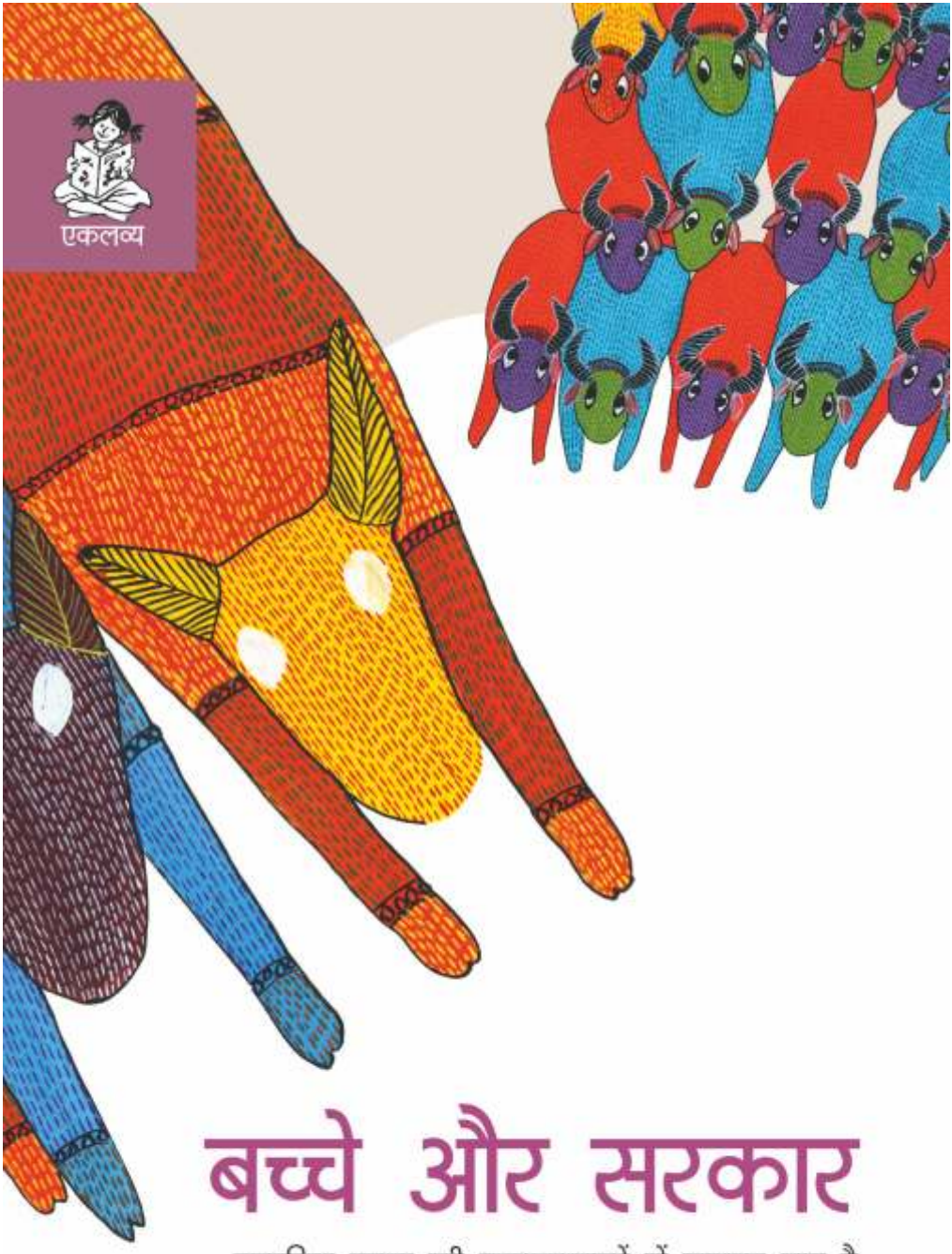

एकलव्य

बच्चे और सरकार

नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में गड़बड़ क्या है

अलेक्स एम जॉर्ज

बच्चे और सरकार

नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में गड़बड़ क्या है

अलक्स एम. जॉर्ज

अँग्रेज़ी से अनुवाद
पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

एकलव्य का प्रकाशन

बच्चे और सरकार

नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में गड़बड़ क्या है

BACHCHE AUR SARKAR

अलक्स एम. जॉर्ज

अँग्रेज़ी से अनुवादः पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

कवर पेंटिंगः दुर्गाबाई व्याम

मूल अँग्रेज़ी संस्करण एकलव्य द्वारा 2007 में प्रकाशित

© एकलव्य, भोपाल / सितम्बर 2010/ 3000 प्रतियाँ

इस किताब के किसी भी भाग का गैर-व्यावसायिक शैक्षणिक उद्देश्य से कॉपीलेफ्ट चिह्न के तहत उपयोग किया जा सकता है। स्रोत के रूप में किताब का उल्लेख अवश्य करें तथा एकलव्य को सूचित करें। किसी भी अन्य प्रकार की अनुमति के लिए एकलव्य से सम्पर्क करें।

ISBN: 978-81-89976-57-6

मूल्यः ₹ 50.00

कागज़ः 80 gsm नेचुरल शेड व 300 gsm आर्ट कार्ड (कवर)

पराग इनिशिएटिव, सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुम्बई के वित्तीय सहयोग से विकसित

यह किताब अँग्रेज़ी में भी उपलब्ध है (ISBN: 978-81-89976-10-1 / Price: ₹ 70.00)

प्रकाशकः **एकलव्य**

ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल - 462016 (म.प्र.) फोनः (0755) 267 1017, 255 1109
फैक्सः (0755) 255 1108
www.eklavya.in
सम्पादकीयः books@eklavya.in
किताबें मँगवाने के लिएः pitara@eklavya.in

मुद्रकः आदर्श प्राइवेट लिमिटेड, भोपाल (म.प्र.) फोनः 2555442

विषय सूची

प्रकाशक की टिप्पणी 4

आमुख **6**

आभार 10

1. **परिचय** 11
   पृष्ठभूमि
   नागरिक शास्त्र पर आलोचनात्मक दृष्टि
   अध्ययन की विधि तथा सैम्पल का चयन

2. **बच्चों के साथ चर्चाएँ** 29
   सरकार का गठनः वास्तविक घटनाएँ
   और पाठ्यपुस्तकों का ज्ञान
   सरकार के कार्यः लोक कल्याण या
   विधि निर्माण?

3. **निष्कर्ष व विकल्प** 81
   सरकार को फिर से परिभाषित करना
   'राजनीति' क्यों 'असभ्य' बन जाती है
   विकल्प की ओर

प्रकाशक की टिप्पणी

आठवें दशक के शुरू में एकलव्य ने माध्यमिक शालाओं (कक्षा 6 से 8) के लिए सामाजिक अध्ययन के शिक्षण सम्बन्धी काम प्रारम्भ किया। हमारे सामाजिक विज्ञान समूह के सामने जो काम था उसके कई आयाम थे – एक वैकल्पिक पाठ्यचर्या की परिकल्पना, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, कुछ चयनित स्कूलों में नए तरीके से सीखने-सिखाने की विधि को लागू करने के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण और आठवीं कक्षा के बाद होने वाली सार्वजनिक परीक्षा के लिए एक उपयुक्त व्यवस्था बनाना।

समूह के उद्देश्यों में एक था नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या पर पुनर्विचार। हमने एक रणनीति विकसित की ताकि सामाजिक व आर्थिक जीवन से जुड़े कुछ विषयों को भी नागरिक शास्त्र के तहत लाया जा सके। हमें लगा कि इससे पाठ्यपुस्तकों की जानकारी को आसपास की दुनिया से जोड़ा जा सकेगा। सरकार के स्थानीय, राज्य स्तरीय व केन्द्र स्तरीय ढाँचों जैसे परम्परागत विषयों को इसमें रखा गया, पर उनकी प्रस्तुति का तरीका बदल दिया गया। हमने कुछ केस स्टडीज़ को शामिल किया ताकि विषयवस्तु को गहराई मिले, कुछ उपविषयों को काट दिया और ढाँचे को कुछ ऐसे प्रस्तुत करने की कोशिश की जिससे उसे एक ज़्यादा तार्किक, वास्तविक तथा ठोस क्रम में रखा जा सके।

स्थानीय सरकार के ढाँचों, जैसे पंचायतों और नगर निगमों की चर्चा के सन्दर्भ में यह तरीका सफल रहा, पर सरकार के ऊपरी स्तरों पर इस प्रयोग से भी मदद न मिली। बच्चे केन्द्र तथा राज्य सरकारों की चर्चाओं को अपने निजी अनुभवों से जोड़ पाने में कठिनाई महसूस कर रहे थे। उनके पास रोज़मर्रा स्तर की जो जानकारी थी वह नाकाफी सिद्ध हुई। बच्चों को यह

समझने में कठिनाई हुई कि दरअसल ये ढाँचे व्यापक स्तरों पर कैसे काम करते हैं।

ये अड़चनें किस तरह की थीं? जो जानकारी मीडिया के मार्फत बच्चों तक पहुँचती है उसके अर्थ वे कैसे समझते हैं? वह क्या है जो अस्पष्ट रह जाता है? हमें यह साफ समझ आया कि देश की केन्द्र और राज्य सरकारों के ढाँचों को जिस तरह से पढ़ाया जाता है उसमें आने वाली समस्याओं को हमें सामने रखना होगा और उनका विश्लेषण करना होगा।

इसी सन्दर्भ में हमने एक सामान्य अध्ययन करने का सोचा ताकि यह जाना जा सके कि नागरिक शास्त्र की पारम्परिक पाठ्यपुस्तकों से बच्चे वास्तव में क्या सीखते हैं। यह एक सुखद और फलदायक इत्तफाक था कि अलक्स एम. जॉर्ज ठीक इसी समय समूह से जुड़े और इस समस्या का विस्तृत अध्ययन कर पाए। इस पुस्तक में उनके द्वारा किए गए अध्ययन के निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। स्कूल के स्तर पर पाठ्यचर्या निर्माण व उसके लिए उचित दृष्टिकोण के सन्दर्भ में ये निष्कर्ष महत्वपूर्ण हैं। हमें आशा है कि यह प्रकाशन शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और शिक्षकों को एक आवश्यक व प्रासंगिक बहस में जोड़ेगा ताकि नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या बच्चों के लिए अधिक सार्थक बन सके।

अरविन्द सरदाना
एकलव्य

आमुख

...लोकतंत्र को ऐसी परिस्थितियों में भी कायम रहना पड़ा है जिन्हें रूढ़ राजनैतिक सिद्धान्त अनुपयुक्त घोषित करते हैं: गरीब, निरक्षर तथा अतिविविध किस्म के नागरिकों के बीच...। कानूनी मीनमेख निकालने वाले विशिष्ट राष्ट्रवादी वर्ग द्वारा सरकार के एक प्रकार के रूप में प्रारम्भ की गई इस व्यवस्था को समाज का एक नियम बनाने के लिए और विस्तृत व गहन किया गया है, जिससे भारतीयों को उपलब्ध सम्भावनाएँ ही बदल गई हैं। *भारतीयों ने इसे अपना लिया और इसके बारे में सीखा, पर पाठ्यपुस्तकों से नहीं बल्कि रोज़मर्रा के अभ्यास से।**

—सुनील खिलनानी, *द आइडिया ऑफ इण्डिया*, पेंगुइन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 9-10. यह पुस्तक भारत की आज़ादी के पचासवें वर्ष के उपलक्ष्य में लिखी गई।

नागरिक शास्त्र शिक्षण कार्यक्रम देश के सभी भागों में लागू हैं ताकि नागरिकों को भावी राजनैतिक व्यवस्था के बारे में सिखाया जा सके, उन्हें जागरूक किया जा सके कि स्वतंत्रता, लोकतंत्र, न्याय व शान्ति ही विकास और जन सामान्य के कल्याण की मूलभूत परिस्थितियाँ हैं।*...लोकतंत्र का गठन रातोंरात नहीं हो सकता। यह तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लम्बे अनुभव से ही सम्भव है। इस तरह नया राष्ट्र आज़ादी पाने के लिए भाग नहीं रहा है।**

—ज़ानाना गुसमान, *फ्रंटलाइन* में मार्च 2001 को प्रकाशित, जब उनका राष्ट्र, पूर्वी टिमोर, आज़ादी पाने वाला था।

---

* तिरछे छपे शब्दों पर ज़ोर लेखक ने दिया है।

उपरोक्त मत एक राजनैतिक समाज में शिक्षा की उपयोगिता सम्बन्धी दो विरोधी सरोकारों को ध्वनित करते हैं। इनमें से एक है एक देश में लोकतंत्र के पचास वर्षीय अनुभवों पर चिन्तन, तो दूसरा एक ताज़ा-ताज़ा बन रहे राष्ट्र से है। ऐसे विपरीत सरोकारों के चलते हमें अपने देश में राजनैतिक शिक्षण के महत्व को कैसे आँकना चाहिए जो अब तक नागरिक शास्त्र की श्रेणी में रखकर दिया जा रहा था? पाठ्यपुस्तकें वह स्थान हैं जहाँ हम इस सवाल के उत्तर तलाश सकते हैं। अतः यह पुस्तक उस सबको जाँचने-तलाशने की चेष्टा करती है जिसकी पाठ्यपुस्तकें चर्चा करती हैं। साथ ही, यह बच्चों के रोज़मर्रा के जीवन से और उनकी राजनैतिक समझ से भी ज़रूरी तत्वों को निकाल बाहर लाती है। जब हम इन जुड़वाँ पक्षों को समेकित करते हैं तो हम नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या में प्रस्तुत सरकार के आदर्शों की विवेचना तक पहुँच पाते हैं।

इस पुस्तक में जिन सवालों की जाँच-पड़ताल की गई है वे नए नहीं हैं। जो लोग स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं वे एक अर्से से उनसे वाकिफ हैं। इनमें एकलव्य का सामाजिक विज्ञान समूह शामिल है। ये लोग जानते हैं कि पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु में खामियाँ हैं और शिक्षण पद्धति में भी। अतः मेरा काम इतना भर था कि इन खामियों को ढूँढकर लोगों के समक्ष कुछ सबूतों के साथ प्रस्तुत करूँ ताकि वह सब उजागर हो जाए जिसे लोग सहज ढंग से पहले से ही जानते थे।

हम कई बार "पाठ्यपुस्तकीय" (textbookish) शब्द का प्रयोग उस सबको खारिज करने के लिए करते हैं जो पाठ्यपुस्तकों में दिया गया होता है। तथापि अक्सर पाठ्यपुस्तकों को उन महान वृत्तान्तों (grand narratives) का परिणाम भी माना जाता है जो पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में दर्शाए गए होते हैं। परन्तु बिरले ही पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन यह जानने के लिए किया जाता है कि पाठ्यचर्या दस्तावेज़ जिन महान वृत्तान्तों का ज़िक्र करते हैं उन्हें पाठ्यपुस्तकें प्रस्तुत करने में सफल हो पाई हैं या नहीं। इस तरह के मूल्यांकन के लिए हमने समस्या के तीन पक्षों को एक-दूसरे के साथ रखने की चेष्टा की: 1) पाठ्यचर्या के आदर्श; 2) पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु;

और 3) पाठ्यपुस्तकों में वर्णित अवधारणाओं के विषय में बच्चों की धारणाएँ, जो धारणाएँ वे अपनी सामाजिक दुनिया से पा लेते हैं। हम देखेंगे कि जब हम इन तीनों पक्षों को साथ-साथ रखते हैं तब हमें वे घोर फासले स्पष्ट नज़र आने लगते हैं जो इनके बीच हैं।

इस पुस्तक को निम्नलिखित ढंग से व्यवस्थित किया गया है: अध्याय 1 हमारे इस अध्ययन की पृष्ठभूमि देता है और यह स्पष्ट करता है कि इसे जिस तरह आयोजित किया गया, वैसा दरअसल क्यों किया गया। अध्याय 2, जो कि पुस्तक का केन्द्र है, उन कमियों को उजागर करता है जो पाठ्यपुस्तकों में समझाई गई अवधारणाओं और बच्चों के उनसे सम्बन्धित ज्ञान में हैं। इस अध्याय में हम बच्चों की उन आम धारणाओं को रख पाए हैं जो सरकार के बारे में हैं। अन्तिम अध्याय पाठ्यपुस्तकों, बच्चों व पाठ्यचर्या आदि की चर्चा को और फैलाता है ताकि राजनीति शिक्षण व सरकार के विषय में वैकल्पिक सोच में योगदान हो। यह अध्याय स्पष्ट करता है कि हमें उन तरीकों के बारे में नए सिरे से सोचने की ज़रूरत है जिनके माध्यम से पाठ्यपुस्तकें राजनैतिक संस्थाओं के सम्बन्ध में प्रमुख सामाजिक दृष्टियों को समेकित कर सकें या उनका विरोध कर सकें, ताकि इन संस्थाओं को लेकर आलोचनात्मक विवेचन उभरकर सामने आए।

पुस्तक में 'सरकार' शब्द के उपयोग के विषय में भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ। इस शब्द का उपयोग सोच-समझकर किया गया है। मैंने शुरुआत में ही गौर किया था कि जब भी मैं इस विषय पर अकादमिक जगत के अपने मित्रों से चर्चा करता तो वे फौरन मुझे 'राज्य' को परिभाषित करने को कहते। "अगर तुम्हारा शोध यह समझाने की कोशिश है कि बच्चे राज्य या सरकार से क्या समझते हैं," वे कहते, "तो तुम्हें यह स्पष्ट होना चाहिए कि राज्य से तुम्हारा तात्पर्य क्या है।" चूँकि मुझे राज्य या सरकार के महान वृत्तान्त (metanarrative) का खास ज्ञान न था, और न ही मुझे इन मित्रों पर धाक जमानी थी, मैंने तय किया कि मैं दोनों के लिए 'सरकार' शब्द का ही उपयोग करूँगा और इस तरह इस समस्या से छुटकारा पा लूँगा। आम

चलन में 'सरकार' शब्द का अर्थ शायद राज्य तथा सरकार दोनों ही होता है। और यही लचीलापन राज्य तथा सरकार के विषय में आम ज्ञान को परिलक्षित भी करता है, जो इस अध्ययन का सरोकार भी है, बजाय पाठ्यपुस्तकों में दी गई परिभाषाओं के। यह ज्ञान बच्चों द्वारा प्रयुक्त शब्द "आगे सरकार" में भी परिलक्षित होता है। बच्चे जब "आगे सरकार" कहते तो उनका मतलब होताः वह सरकार जो ऊपर, दूर है। जैसा हम देखेंगे, इन बच्चों के लिए सरकार केवल ग्राम, ज़िला, राज्य व केन्द्र स्तर की संस्थाएँ मात्र नहीं है, बल्कि वह पदक्रम भी है जो उन लोगों से निर्मित होता है जो राजनैतिक दलों के सदस्य हैं और जो सत्तावान हैं।

अलक्स एम. जॉर्ज

आभार

जब मैंने वह रिपोर्ट लिखी जिस पर यह पुस्तक आधारित है, तब मैं एकलव्य का ही सदस्य था। अतः उस वक्त शायद एकलव्य के उन दूसरे सदस्यों का नाम लेना ज़रूरी नहीं था जिन्होंने शोध की विभिन्न अवस्थाओं में मुझे हिम्मत दी और मेरा मार्गदर्शन किया। परन्तु अब जब मैं एकलव्य में नहीं हूँ, मैं उन्हें धन्यवाद देने और उनके प्रति अपना आभार प्रकट करने के काम को टाल नहीं सकता।

सबसे पहले तो मुझे यह कहना चाहिए कि अरविन्द सरदाना के सतत मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के बिना यह अध्ययन न तो पूरा हो सकता था और न ही वह अपने वर्तमान रूप में होता। मेरी रिपोर्ट में एक भी विचार या वाक्य ऐसा नहीं था जिस पर उन्होंने टिप्पणी न की हो या जिसे उन्होंने सुधारा न हो। मैं रवि भाई का भी बहुत आभारी हूँ जिन्होंने टूटी-फूटी हिन्दी में लिखी मेरी प्रतिलिपियों को अपने प्रख्यात 'रवि फॉन्ट' में दुबारा लिखा, और दिनेश पटेल का जिन्होंने साक्षात्कार लेने में मेरा साथ दिया। रिपोर्ट के तीन अवतार हुए। एकलव्य के सामाजिक विज्ञान समूह ने, और सबसे ज़्यादा अमन मदान ने, उन सबको सुधारा और उन पर टिप्पणी की। अनु गुप्ता, जो उस समूह की सदस्य नहीं थीं, ने भी उतनी ही मदद की। देवास में एकलव्य के अन्य सदस्य हर 'मन्थली मीटिंग' में मुझसे पूछते थे, "तुम्हारी सरकार रिपोर्ट का क्या हुआ?" इस तरह उन्होंने निश्चित किया कि यह अध्ययन एक ऐसा प्रोजेक्ट न बन जाए जो लगातार चलता रहे!

अध्ययन की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान उनकी टिप्पणियों और सुझावों के लिए मैं सारा जोसेफ, आर.के. गुप्ता, गीता नम्बीशन, फरीदा खान तथा शारदा बालगोपालन को भी धन्यवाद देना चाहूँगा। अन्त में, मेरी रिपोर्ट को इस पुस्तक का रूप देने के लिए मैं एकलव्य के प्रकाशन दल का आभारी हूँ।

अलक्स एम. जॉर्ज

1. परिचय

पृष्ठभूमि

स्कूली पाठ्यचर्या में जिस तरह का नागरिक शास्त्र पढ़ाया जाता है वह कई कारणों से शोधकर्ताओं के लिए रोचक रहा है। नागरिक शास्त्र की विषयवस्तु को अक्सर राज्य की पुष्टि का माध्यम माना जाता है। स्कूलों में नागरिक शास्त्र सिखाने-पढ़ाने के सहारे राज्य स्वयं के बारे में बताता है और यों खुद को कायम रखता है।

पाठ्यचर्या सम्बन्धी अपने नवाचारों में एकलव्य ने नागरिक शास्त्र की परिभाषा को विस्तृत किया और उसमें वित्तीय संस्थाओं और नीतियों को भी शामिल किया। पाठ्यचर्या में अर्थशास्त्रीय अवधारणाओं की एकलव्य सार्थक चर्चा कर सका। हमारे अनुभव ने दर्शाया कि बच्चे पाठ में विश्लेषित कई आर्थिक प्रक्रियाओं से स्वयं को जोड़कर उन्हें समझ पाए। परन्तु राजनैतिक संस्थाओं व प्रणालियों को फिर से परिभाषित कर पढ़ाने के प्रयास को कठोर चुनौती का सामना करना पड़ा।[1] ऐसा इसलिए था क्योंकि जो मुख्य राजनैतिक संस्थाएँ वित्तीय संस्थाओं व नीतियों को नियंत्रित करती हैं, वे बच्चों के ज़ेहन से काफी दूर होती हैं। उदाहरण के लिए, सातवीं कक्षा की नागरिक शास्त्र की पुस्तक में एक अध्याय है

1. एकलव्य की नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या में राजनैतिक संस्थाओं पर जो अध्याय हैं उनमें "ग्राम पंचायत", "ज़िला प्रशासन", "कानून, अदालत और न्याय", "राज्यों की सरकार" तथा "केन्द्रीय सरकार" शामिल हैं। इनमें पहले तीन अध्यायों की विषयवस्तु व प्रस्तुति सामान्य पाठ्यपुस्तकों से भिन्न है और स्थानीय संस्थाओं और उनके कार्यों से जुड़ने की क्षमता रखती है। सरकार की इन संस्थाओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि उनके आदर्श स्वरूप व ज़मीनी वास्तविकता के बीच का तनाव स्पष्ट नज़र आता है। परन्तु अन्तिम दो अध्यायों में ऐसा जुड़ाव स्थापित नहीं हो पाया है।

"बीड़ी निर्माण में ठेकेदारी की प्रणाली" और दूसरा है "राज्यों की सरकार"। इनमें से पहले अध्याय में बताया गया है कि सरकार ने बीड़ी निर्माताओं के हित में किस प्रकार की नीतियाँ धीमे-धीमे विकसित कीं, जबकि दूसरे अध्याय में यह बताया गया है कि सरकार की विभिन्न संस्थाएँ किस तरह विकसित हुईं, उनके क्या-क्या कार्य हैं, इत्यादि। यहाँ बच्चे बीड़ी बनाने में जुटे कारीगरों से सम्बन्धित सरकारी नीतियाँ तो समझ लेते हैं, परन्तु अमूर्त रूप में सरकार के ढाँचे और सिद्धान्तों की कल्पना नहीं कर पाते।[2]

यह पुस्तक उन समस्याओं पर ध्यान देती है जो उन संस्थाओं के सन्दर्भ में उभरती हैं जो बच्चों के अपने अनुभवों से कुछ दूरी पर हों। परन्तु नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या में राजनैतिक संस्थाओं और विचारों पर बल देना कम कर उसमें किसी प्रकार का बदलाव लाने की कोशिश को इस पुस्तक में आम तौर पर शंका की नज़र से देखा गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि 1) नागरिक शास्त्र की परम्परागत पाठ्यचर्या में इन संस्थाओं और विचारों को केन्द्रीय एवं अपरिवर्तनीय माना गया है, तथा 2) ये विषय उन महत्वपूर्ण संस्थाओं से परिचय करवाते हैं जो व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं।

नागरिक शास्त्र पर आलोचनात्मक दृष्टि

नागरिक शास्त्र की विषयवस्तु के मूल्यांकन के लिए किए गए अध्ययनों को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं। ये हैं: 1) वे अध्ययन जो शिक्षा के

---

2. इस पुस्तक में 'सरकार' शब्द का उपयोग कई अर्थों में किया गया है। बोलचाल की भाषा में विभिन्न सन्दर्भों में इसका अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। कहीं इसका अर्थ 'सरकार के ढाँचे' होता है, तो कहीं 'लोगों का एक समूह या सरकार का कोई व्यक्ति या एक अमूर्त विचार।' अर्थात् इसका अर्थ सन्दर्भ से निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए, "तब सरकार बनाई गई", या "वह आदमी सरकार का है", या "वह सरकारी अधिकारी है" आदि कथनों में इस शब्द के अर्थ के कई रूप झलकते हैं। रोज़मर्रा के जीवन के इन कथनों में 'सरकार' शब्द का मतलब विधायक, सांसद, मुख्यमंत्री जैसे किसी व्यक्ति या किन्हीं ढाँचों/व्यक्तियों के समूह, जैसे मंत्रिमण्डल, से भी हो सकता है।

समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से किए गए, और 2) वे अध्ययन जो नागरिकता शिक्षण/राजनैतिक समाजीकरण के प्रतिपादकों द्वारा किए गए। यहाँ यह स्पष्ट करना ज़रूरी होगा कि इस पुस्तक में दिया गया अध्ययन इन दोनों ही किस्म के अध्ययनों से भिन्न है।

शिक्षा का समाजशास्त्र

नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या के मूल्यांकन का एक प्रचलित तरीका यह विश्लेषण करना है कि 'ज्ञान के कुछ क्षेत्रों को किस प्रकार इतना मूल्यवान माना जाने लगता है कि पाठ्यचर्या में उन्हें जगह मिले।' इसमें वह विश्लेषण भी शामिल है जो यह स्पष्ट करता है कि पाठ्यचर्या की विषयवस्तु का कोई खास चयन राज्य और समाज द्वारा अपने आप को कायम रखने में किस प्रकार मददगार सिद्ध होता है।

जिन विश्लेषणों में शिक्षा के समाजशास्त्र की विधियाँ काम में ली जाती हैं, उनमें इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि पाठ्यपुस्तक के प्रधान वर्णन में समाज के किसी वर्ग विशेष के कौन-कौन से पूर्वाग्रह हैं। ये पूर्वाग्रह अक्सर पुरुषवादी/शहरी/मध्यमवर्गीय श्रेणियों में रखे जाते हैं।[3] कभी-कभार लेखक पाठ्यपुस्तक को परिभाषित करने वाले परिमाणों से परे जाकर यह विश्लेषण करता है कि कक्षाओं में पाठ्यपुस्तक का जैसा उपयोग किया जाता है वह किस प्रकार इन पूर्वाग्रहों को बरकरार रखने का काम करता है। कृष्ण कुमार ऐसे अध्ययनों की सीमाओं के विषय में कहते हैं:

> यह विधि मानकर चलती है कि पूर्वाग्रह का मतलब है किन्हीं विशेषताओं या विशेष लक्षणों की मौजूदगी या नामौजूदगी। यह सम्भावना कि पूर्वाग्रह पाठ में दर्शाए गए रिश्तों के ढाँचे में निहित हो सकता है, तथा कुछ छितरे-बिखरे लक्षणों में भी, यह विचार

3. अमन मदान, "नागरिक शास्त्र की पुस्तकों में नागरिकों की छवि", *शैक्षणिक संदर्भ*, 5, 1995, पृष्ठ 88.

4. कृष्ण कुमार, *सोश्यल कैरेक्टर ऑफ लर्निंग*, सेज, नई दिल्ली, 1989, पृष्ठ 16-17.

इस लोकप्रिय विधि से छूट जाता है।[4]

कक्षा में पढ़ने-पढ़ाने की विधि को देखकर कृष्ण कुमार दर्शाते हैं कि ज्ञान का "चयन व उसकी प्रस्तुति" कैसे होती है। उनके विचार में पाठ को बनाने, क्रियान्वित करने और कक्षा में उसे पढ़ाने की प्रक्रिया सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को डुबाने की कोशिश करती है:

> ...मौजूदा पाठ्यचर्या व शिक्षण के तौर-तरीकों के तहत शिक्षा तथाकथित 'पिछड़ी' पृष्ठभूमि से आने वाले शिक्षार्थियों को 'पिछड़े' आचरण के प्रतीकों को आत्मसात करने में मदद करती है।...हमें उन अल्पसंख्यक 'पिछड़े' छात्रों की नियति की उतनी फिक्र नहीं करनी चाहिए जो इस प्रक्रिया के कारण 'मध्यमवर्गीय' बन जाते हैं, बल्कि उन असंख्य छात्रों की चिन्ता करनी चाहिए जो बाहरी या छिपे उपकरणों द्वारा स्कूली व्यवस्था से ही निकाल दिए जाते हैं।[5]

कुछ विद्वान नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या का मूल्यांकन उसकी "औपनिवेशिक विरासत"[6] के आधार पर करते हैं। वे दिखाते हैं कि औपनिवेशिक स्वामियों ने कैसे इस विषय का सूत्रपात किया, और आधुनिक राज्य, जिसका दृष्टिकोण बिलकुल नया है, औपनिवेशिक स्वामियों के मूल्यों को कायम रखना चाहता है।

इस तरह के अध्ययनों ने दर्शाया है कि विकल्पों की परिकल्पना करते समय सावधान रहने की ज़रूरत है। उनका मानना है कि पुस्तकों में जो छपा है उसका उद्देश्य शायद इसलिए हासिल न हो पाए क्योंकि समाज तथा पाठ की पारस्परिक अन्तर्क्रिया पाठ में निहित अर्थों को ही पुनर्परिभाषित

---

5. उपरोक्त, पृष्ठ 76.

6. उदाहरण के लिए देखें, एम. जैन, "एवोल्यूशन ऑफ सिविक्स एंड सिटिज़न इन इण्डिया"। यह पर्चा नवम्बर 1999 में नई दिल्ली में हुए दक्षिण एशिया के शिक्षा सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया था।

कर डालती है।

नागरिकता शिक्षण / राजनैतिक समाजीकरण

इस श्रेणी के अध्ययन विषयवस्तु तथा उस बच्चे के बीच एक सीधा रिश्ता प्रस्तावित करते हैं जिसे 'भावी नागरिक' कहा जाता है। उनकी अपेक्षा यह रहती है कि पाठ्यचर्या भविष्य में 'बेहतर नागरिकों का निर्माण' करेगी। इस तरह पाठ्यचर्या की ऐसी परिभाषा यह तय कर देती है कि पुस्तक पढ़ने वाले बच्चों को मूल्यगर्भित सन्देश दिए जाएँ। जो शोधकर्ता नागरिकता शिक्षण के दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं, वे नागरिक शास्त्र की पुस्तकों की विषयवस्तु का मूल्यांकन करते समय दो प्रतिमानों का उपयोग करते हैं: 1) नागरिकता व राष्ट्रीयता के विचार को सम्प्रेषित करने की पुस्तक की क्षमता क्या है, तथा 2) किसी राजनैतिक विचारधारा से जुड़ी कुछ अभिवृत्तियों व मूल्यों को पुस्तक कितना सम्प्रेषित कर पाएगी।

राजनैतिक समाजीकरण की दृष्टि से किए गए अध्ययन सातवें दशक के शुरुआती भाग तक, खास तौर से संयुक्त राज्य अमरीका में किए जाते रहे। इन अध्ययनों में उस प्रक्रिया पर गौर किया गया जिसके चलते कोई व्यक्ति किसी राजनैतिक दल से जुड़ता है और एक 'राजनैतिक' रवैया विकसित करता है। इस दृष्टि के महत्वपूर्ण लेखकों में हर्बर्ट एच. हाईमन, फ्रेड आई. ग्रीनस्टाइन तथा आल्मण्ड व वेर्बा शामिल हैं।[7] इस विचारधारा वाले लोग जो तर्क देते हैं उनका प्रतिनिधित्व हाईमन का निम्नोक्त उद्धरण करता है:

> राजनैतिक आचरण बेहद जटिल होता है तथा उसके अनेक आयाम समाजीकरण से उपजते हैं यह माना जा सकता है। यह

---

7. देखें हर्बर्ट एच. हाईमन, *पॉलिटिकल सोश्यलाइज़ेशन*, मैकमिलन, न्यू यॉर्क, 1972; फ्रेड आई. ग्रीनस्टाइन, *चिल्ड्रन एंड पॉलिटिक्स*, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1960; तथा गेब्रिएल ए. आल्मण्ड व सिडनी वेर्बा, *द सिविक कल्चरः पॉलिटिकल एटीट्यूड एंड डिमॉक्रेसी इन फाइव नेशन्स*, लिटिल ब्राउन एंड कम्पनी, बॉस्टन, 1963.

> तर्कसंगत ही लगता है कि राजनीति से जुड़ने या उसमें भागीदारी के कम से कम दो आयामों को बाकी आयामों से अलग कर लिया जाए, और इस जुड़ाव के चलते यह देखा जाए कि किस प्रकार के राजनैतिक लक्ष्यों या नीतियों को तलाशा जा रहा है।[8]

> ...राजनैतिक भागीदारी के आधार पर इन अध्ययनों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। उनकी श्रेणी इस बात पर निर्भर करेगी कि राजनैतिक भागीदारी का संकेतक क्या है: वह अहं-केन्द्रित आदर्शों का चयन है या मीडिया का व्यवहार है या राजनैतिक ज्ञान का स्तर है या राजनैतिक जुड़ाव व रुचि सम्बन्धी प्रत्यक्ष प्रश्नों के बारे में प्रतिक्रिया।[9]

ऐसे सभी अध्ययन यह तर्क देते हैं कि नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों को महत्वपूर्ण मानकर उनके मार्फत उन तमाम मुद्दों को सम्बोधित करना चाहिए जो बच्चों के 'राजनैतिक' ज्ञान से जुड़े हों।[10] इस धारा के आलोचक ध्यान दिलाते हैं कि राजनैतिक समाजीकरण से जुड़े अध्ययन इसलिए प्रारम्भ हुए थे कि यह जाँचा जा सके कि बच्चों पर नागरिक शास्त्र शिक्षण का क्या असर पड़ता है। उनके अनुसार ऐसे अध्ययनों के लिए सरकार वित्त देना चाहती थी क्योंकि बहुत से नौजवान वाम की रेडिकल राजनीति की ओर आकर्षित हो गए थे। साथ ही समाज का एक तबका तानाशाही शासन की प्रशंसा करने लगा था। इन सभी घटकों को मौजूदा सरकारी व्यवस्था के लिए खतरा माना जाने लगा था।

---

8. हाईमन, उपरोक्त, पृष्ठ 18.
9. उपरोक्त, पृष्ठ 21.
10. उमा वार्षणे, *एजुकेशन फॉर पॉलिटिकल सोश्यलाइज़ेशन,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1983, पृष्ठ 136.

आज राजनैतिक समाजीकरण का विषय ही पुराना पड़ चुका है। यह बदलाव किस हद तक 'कल्याणकारी' राज्य के कार्यों से पीछे हटने के कारण है, यह अस्पष्ट है।[11] यहाँ यह गौर करना ज़रूरी है कि नागरिकता व राजनैतिक समाजीकरण जैसे अवधारणा क्षेत्रों की परिभाषाएँ काफी क्षीण हो चुकी हैं। इन दोनों अवधारणा क्षेत्रों को यह स्पष्ट करने के लिए अदल-बदलकर भी काम में लिया जाता है कि कोई व्यक्ति किसी राजनैतिक व्यवस्था के मानदण्डों तथा मूल्यों को किस प्रकार आत्मसात करता है।[12]

भारतीय सन्दर्भ विशेष को समझने के लिए हमें उन बहसों व चर्चाओं का विश्लेषण करना होगा जिनके चलते नागरिकता के विषय ने एक खास रूपरेखा में 'स्थान' पाया। इस विचार के प्रतिपादक नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों को जिस नज़रिए से देखते हैं उसका मुख्य घटक है अच्छे नागरिकों का निर्माण। वार्षणे कहती हैं:

> यह सच है कि आज़ाद भारत हिंसक राजनैतिक क्रान्ति व गृह युद्ध के सदमे से बच गया। परन्तु देश की राजनैतिक संस्थाओं की कार्यशैली सन्तोषप्रद नहीं है। जब भी सार्वजनिक लेने-देन में लोगों का आचरण सही नहीं होता या जब वे नागरिक संघर्ष में

---

11. कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि कल्याणकारी राज्य समाप्त होने से नागरिक शास्त्र तथा इस तरह राजनैतिक समाजीकरण ही अप्रासंगिक बन गया। परन्तु इस अप्रासंगिकता के अन्य कारण भी हो सकते हैं। अमरीकी शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यचर्या सम्बन्धी दृष्टिकोणों में आए बदलावों पर एक महत्वपूर्ण अध्ययन गैरी वेहलेज एवं ई.एम. एण्डरसन द्वारा किया गया था, जिसका शीर्षक था *सोश्यल स्टडीज़ करिक्युलम इन पर्सपेक्टिव: ए कन्सैप्चुअल एनैलिसिस* (प्रैन्टिस हॉल, न्यू जर्सी, 1972)। भारतीय सन्दर्भ में सरोकारों में आए बदलावों के विषय में एक वर्तमान उदाहरण लेते हुए हम देख सकते हैं कि कैसे कुछ समूह पर्यावरण शिक्षा/चेतना को पाठ्यचर्या या स्कूली कार्यक्रमों में धकेलने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे कई प्रयास शिक्षा/मीडिया समूहों द्वारा किए जा रहे हैं, जैसे सेंटर फॉर साइंस एंड इन्वायरनमेंट, नई दिल्ली, उत्तराखण्ड सेवा निधि, अल्मोड़ा, तथा सेंटर फॉर इन्वायरनमेंटल एजुकेशन, अहमदाबाद आदि।

12. देखें रॉबर्ट एल. इबेल (सम्पादित), *सिटिज़नशिप एंड पॉलिटिकल सोश्यलाइज़ेशन*, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, मैकमिलन, लन्दन, 1969, पृष्ठ 129.

> लिप्त हो जाते हैं, या कतार तोड़ते हैं, तो यह कहा जाता है कि "शिक्षा व्यवस्था असफल रही।" दूसरे शब्दों में, शिकायत यह की जाती है कि हमारे स्कूल और कॉलेज अच्छे नागरिक नहीं बना पाते।[13]

नागरिक शास्त्र से जुड़े मूल्य बच्चों तक सम्प्रेषित करने में पाठ्यचर्या कितनी सफल रही है यह जाँचने के लिए वार्षणे उत्तरप्रदेश की पाठ्यचर्या का विश्लेषण करती हैं। वे नागरिक शास्त्र पढ़ने तथा उसे न पढ़ने वाले छात्रों का मूल्यांकन उनके 1) राजनीति के ज्ञान, 2) राजनीति में रुचि/भागीदारी, 3) राजनैतिक प्रभावोत्पादकता/शंकालु छिद्रान्वेष, 4) नागरिक बोध, तथा 5) लोकतांत्रिक आचरण के आधार पर करती हैं।[14] उनका लक्ष्य है नागरिक शास्त्र पढ़ने वाले व न पढ़ने वाले छात्रों में 'स्पष्ट' अन्तर दर्शाना और नागरिक शास्त्र को पाठ्यचर्या में शामिल करने के विचार को प्रचारित करना।

राजनैतिक ज्ञान के महत्व का विश्लेषण करते समय वार्षणे नागरिक संस्कृति पर आल्मण्ड व वेर्बा के विचारों को सामने लाती हैं:

> राजनैतिक ज्ञान देना नागरिकता शिक्षण का एक हिस्सा मात्र है। फिर भी यह एक महत्वपूर्ण घटक है। "हम यह मान सकते हैं कि अगर लोग राजनैतिक व सरकारी मामलों की खोज-खबर रखते हैं, तो वे किसी न किसी अर्थ में उस प्रक्रिया से भी जुड़ते हैं जिसके द्वारा निर्णय लिए जाते हैं। ज़ाहिर है कि यह जुड़ाव का न्यूनतम स्तर है। जिस अर्थ में हम नागरिक संस्कृति पद का प्रयोग करते हैं उसमें राजनैतिक गतिविधियों में भागीदारी करने के दायित्व के साथ भागीदारी कर पाने की क्षमता होने का भाव भी शामिल

---

13. उमा वार्षणे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 6.

14. उपरोक्त, पृष्ठ 41.

15. उपरोक्त, पृष्ठ 65. (उद्धरण चिह्नों के भीतर जो वाक्य हैं वे वार्षणे ने आल्मण्ड तथा वेर्बा की पुस्तक *द सिविक कल्चर* से उद्धृत किए हैं।)

है।"[15]

यहाँ नागरिकता की समझ का मूल्यांकन करना ज़रूरी होगा। राष्ट्रीय शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी.) के नागरिकता शिक्षण के दस्तावेज़ों का इस्तेमाल यहाँ उपयोगी रहेगा। वार्षणे पहले के एक दस्तावेज़ के सहारे एन.सी.ई.आर.टी. के दृष्टिकोण को साफ करती हैं:

> "अच्छे नागरिक ढेर सारे तथ्यों की जानकारी से नहीं बल्कि समुदाय के रोज़मर्रा के जीवन में वास्तविक अनुभवों की समझ से उभरते हैं।" चन्द सुपरिभाषित व सुनियोजित गतिविधियों के लिए तथा सिर्फ प्रासंगिक स्कूली कार्यक्रमों में ही सही, स्कूल को एक लघु-राजनैतिक व्यवस्था का रूप ले लेना चाहिए। मतों के टकराव या असहमति व्यक्त करने का भय स्कूली स्तर पर चुनाव, मतदान या वाद-विवाद से परहेज़ का कारण नहीं बन सकता। 'अभिवृत्तियों का लोकतंत्रीकरण' उन्हीं शिक्षण संस्थाओं में सम्भव है जहाँ का वातावरण लोकतांत्रिक हो। 'लोकतांत्रिक' शब्द ऐसी शिक्षण संस्था को परिभाषित करता है जहाँ प्रत्येक सदस्य निर्णय की प्रक्रिया में भागीदारी कर सके।[16]

प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या — एक रूपरेखा (1986) में उत्तम नागरिकता की संक्षिप्त परिभाषा मिलती है। इस परिभाषा में "भारत की मिश्रित संस्कृति की रक्षा एवं उसकी सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण; देशभक्ति की भावना; भारतीय स्वतंत्रता संग्राम; राष्ट्रीय सामाजिक एकीकरण को प्रोत्साहन; संविधान में निहित मूल्यों का अनुशीलन; पर्यावरण संरक्षण; वैज्ञानिक प्रगति तथा तकनीकी विकास का प्रभाव; समसामयिक सामाजिक व आर्थिक मुद्दे तथा समस्याएँ; एवं नागरिकों के मूलभूत अधिकारों व उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूकता पैदा करना" जैसे जुमलों

---

16. वार्षणे, उपरोक्त, पृष्ठ 145-46.

17. देखें, जे. वीरा राघवन, "गुड सिटिज़न", जो एस.आर. गुप्ता तथा यू. डब्ल्यू. स्कॉटली द्वारा सम्पादित पुस्तक *सिटिज़नशिप एजुकेशनः राइट्स, ड्यूटीज़, रिस्पौंसिबिलिटीज़* में छपा था। रोली बुक्स, नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ 96.

की लम्बी सूची शामिल है।[17]

वैचारिक दृष्टि से ये दस्तावेज़ नागरिक शास्त्र की उस सँकरी परिभाषा से दूर नहीं हटे हैं जो नागरिक शास्त्र को मूल्यों से जोड़ती है। फिर भी शायद यह उपयोगी होगा कि हम एन.सी.ई.आर.टी. के उन प्रयासों पर गौर करें जो इस विषय में ज्ञान व कौशल से सम्बन्धित क्षेत्रों को परिभाषित करते हैं। छठी से आठवीं कक्षा के बच्चों के लिए जो क्षेत्र चिह्नित किए गए हैं, वे हैं:

क) ज्ञानः i. नागरिक शास्त्र शिक्षण का उद्देश्य राज्य के संवैधानिक दायित्वों की तथा कानूनी शासन के प्रति नागरिकों की ज़िम्मेदारी की *जानकारी* देना होना चाहिए. ii. शिक्षार्थियों को नेताओं, सरकार तथा राजनैतिक दलों के वक्तव्यों को *समझने* में मदद करना; उसी तरह उन्हें महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, बी.आर. अम्बेडकर, राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आज़ाद, सरदार पटेल, सुभाष बोस, एस. राधाकृष्णन, ज़ाकिर हुसैन व अन्य गणमान्य व्यक्तियों के विचार समझने में मदद करना।

ख) विवेचनात्मक चिन्तनः एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि शिक्षार्थियों में सार्वजनिक मसलों का *विश्लेषण* करने व *तार्किक* स्तर पर उन्हें समझने की आदत पड़े। बिना सोचे-विचारे चीज़ों को स्वीकारने की बजाय *विवेचनात्मक चिन्तन* को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के विश्लेषण और तर्क-वितर्क के उदाहरण हमें अपने कई राष्ट्रीय नेताओं के भाषणों में मिल सकते हैं।

ग) कौशल तथा आदतें: ये कौशल तथा आदतें कमोबेश वही हैं

18. देखें एस.के. मित्रा का आलेख "सिटिज़नशिप फॉर द सोसायटी ऑफ द फ्यूचर" जो एस.आर. गुप्ता व यू. डब्ल्यू. स्कॉटली द्वारा सम्पादित पुस्तक में छपा है। देखें उपरोक्त। (यहाँ तिरछे छपे शब्दों पर ज़ोर मूल पाठ में ही दिया गया है।) इस आयुवर्ग के लिए "अपनी बारी का इन्तज़ार करना, अचानक उठी इच्छा को नियंत्रित करना, उकसाने पर शान्त रहना, शालीनता व व्यवस्था बनाए रखना, समय की पाबन्दी, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, पशु-पक्षियों के प्रति दया, छोटों का ख्याल रखना, पेड़-पौधों व पर्यावरण की रक्षा आदि आदतों के अनुशीलन की ज़रूरत है।"

जो प्राथमिक स्तर की निचली कक्षाओं के लिए सूचिबद्ध की गई थीं तथा ये सतत अभ्यास द्वारा सुदृढ़ की जाती हैं।[18]

घ) अभिवृत्तियाँ व मूल्यः इस क्षेत्र में भी प्राथमिक स्तर की निचली कक्षाओं के साथ निरन्तरता बनी हुई है, परन्तु ज़िम्मेदारी की भावना व सामुदायिक मामलों में जुड़ाव को बढ़ाया गया है। इस स्तर पर मतों, अभिवृत्तियों व दृष्टिकोणों में मौजूद भिन्नता के प्रति सहनशीलता पैदा करना ज़रूरी है। सम्प्रदाय, भाषा व जाति आधारित पूर्वाग्रहों से ऊपर उठना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, ताकि राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा का सही अर्थ समझा जा सके।[19]

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर एन.सी.ई.आर.टी. का सुझाव यह है कि अवधारणाओं को *और व्यापक किया जाए*। परन्तु माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तरों पर विचारों तथा विषयों को दोहराया गया है। यहाँ धारणा यह है कि दोनों स्तरों पर इस प्रकार के दोहराव से बच्चों में 'कौशल', 'अभिवृत्तियाँ', 'मूल्य', व 'विवेचनात्मक चिन्तन' आदि विकसित हो सकेंगे। विषयवस्तु के रूप में निम्नोक्त पक्षों को शामिल किया गया है:

> इस स्तर पर बच्चों को संवैधानिक अधिकारों, दायित्वों एवं प्रक्रियाओं तथा संसद, विधानसभाओं, न्यायपालिका, सरकार की कार्यकारी शाखाओं, चुनाव, पार्टी प्रणाली, नगर निगम/पालिका व स्थानीय निकायों आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। एक उद्देश्य शिक्षार्थियों को नागरिक जीवन की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सार्थक भागीदारी करने के लिए प्रोत्साहित करना

---

19. उपरोक्त, पृष्ठ 92. परन्तु पाठ्यपुस्तकों में से जो गायब है वह है "समुदायों के रोज़मर्रा के जीवन के वास्तविक अनुभव" के उन्नत विचार को समझाना। ऐसे तत्वों की चर्चा के लिए पाठ्यपुस्तकों में कोई स्थान नहीं है।

20. एस.के. मित्रा द्वारा उद्धृत, उपरोक्त.

> भी होना चाहिए। इसमें शैक्षिक संस्थाएँ तथा लोगों के काम करने के स्थल भी शामिल हैं।[20]

इस बात पर गौर करें कि यहाँ राजनैतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं को ही रेखांकित किया गया है। जो बात अस्पष्ट रह जाती है वह यह है कि पाठ्यचर्या में शामिल की गई संस्थाओं व उनकी कार्य प्रक्रियाओं की जानकारी किस प्रकार सही मूल्य व दृष्टिकोण जगाकर बेहतर नागरिक बनाएगी। राजनैतिक संस्थाओं सम्बन्धी ये विचार प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च माध्यमिक स्तर तक के पाठ्यक्रम में दोहराए जाते हैं। परन्तु इन संस्थाओं के बारे में जानकारी लेते हुए जो मूल्य बच्चों को सिखाए जाने वाले हैं वे वही के वही रहते हैं।

मित्रा का आलेख इस प्रश्न को जाँचता है कि राजनैतिक संस्थाओं से सम्बन्धित विचार बच्चे किस हद तक समझ पाते हैं। परन्तु वह यह नहीं जाँचता कि हमारी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से वांछनीय आदर्शों/मूल्यों को बच्चों तक पहुँचाना कहाँ तक सम्भव है। इस सन्दर्भ में उपयोगी होगा कि हम राजनैतिक समाजीकरण के अध्ययन के अन्दर से उभरी आलोचनाओं पर गौर करें।

जो लोग नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण नागरिकता/राजनैतिक समाजीकरण की दृष्टि से करते हैं वे इस तथ्य को स्वीकारते ही नहीं कि पाठ्यपुस्तकों में "...संघर्ष व बदलाव के बदले स्थायित्व व निरन्तरता की ओर झुकाव की वृत्ति होती है। साथ ही इनमें समाजीकरण की वास्तविक प्रक्रियाओं के प्रति ध्यान का भी अभाव होता है। ये प्रकियाएँ उन विभिन्न परिवर्तनशील घटकों का स्पष्टीकरण देती हैं जो उन पर निर्भर करते हैं। इन प्रक्रियाओं को समझना इसलिए भी आवश्यक होता है क्योंकि इनसे ही कम उम्र में सीखी गई चीज़ों तथा बाद में बनने वाली अभिवृत्तियों व आचरण में रिश्ता जुड़ता है।" इसी प्रकार पाठ्यपुस्तकें अक्सर यह मानकर चलती हैं कि सूचना देना एकतरफा प्रक्रिया है। अतः वे "अधिकतर उस मानवीय उत्प्रेरणा, अभिवृत्तियों के उस सन्दर्भ की उपेक्षा करती हैं

जिसमें समाजीकरण का उद्दीपन समझा जाता है और उसका अर्थ निकाला जाता है। पाठ्यपुस्तकें उन बहुत सारी वैयक्तिक विशेषताओं की भी उपेक्षा करती हैं जो समाजीकरण के लिए लोगों की तैयारी और क्षमता को प्रभावित करती हैं।" [21]

हम इस चर्चा से देख सकते हैं कि नागरिक शास्त्र के दस्तावेज़ किस प्रकार अपनी पाठ्यचर्या के कुछ तत्वों का दैवीकरण करते हैं। इस पुस्तक में दिए गए अध्ययन का महत्व इस बात में है कि इसमें प्रयास ही यह जानने का किया गया है कि बच्चे अपनी मौजूदा पाठ्यपुस्तकों से राजनैतिक संस्थाओं के बारे में क्या और कितना समझते हैं; फिर चाहे ये पुस्तकें विषयवस्तु के माध्यम से कितने ही उच्च आदर्श व मूल्य आरोपित करने की कोशिश क्यों न करती हों।

अध्ययन की विधि तथा सैम्पल का चयन

यह अध्ययन उन लोगों के नज़रिए में से उभरा है जिनकी राजनैतिक संस्थाओं से सम्बन्धित ज्ञान देने तथा छवियाँ गढ़ने में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका का विश्लेषण करने में रुचि है। हमने सर्वप्रथम सातवीं, नौवीं तथा दसवीं की पाठ्यपुस्तकों की अवधारणाओं को सावधानीपूर्वक जाँचा।[22]

मोटे तौर पर पाठ्यपुस्तकों में राजनैतिक संस्थाओं की चर्चा के विश्लेषण से गौर करने लायक दो तत्व उभरे।

ढाँचों की पेचीदगी

---

21. डी.सी. श्वार्ज़ व एस.के. श्वार्ज़, *न्यू डायरेक्शन्स इन द स्टडी ऑफ पॉलिटिकल सोश्यलाइज़ेशन*, द् फ्री प्रैस, न्यू यॉर्क, पृष्ठ 6.

22. हमने जिन पाठ्यपुस्तकों को जाँचा वे थीं: डी.एस. मुले, ए.सी. शर्मा तथा सुप्ता दास की, *हाउ वी गवर्न आवरसेल्वस: ए टेक्स्टबुक ऑफ सिविक्स फॉर क्लास VII*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1988, पुनर्मुद्रित 1998; तथा सुदीप्ता कविराज, *इन्डियन कॉन्स्टिट्यूशन एंड गवर्नमेंट: ए टेक्स्ट बुक इन सिविक्स फॉर क्लास IX एंड X*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1998. हमने एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकें इसलिए चुनीं क्योंकि इस संस्था को एक मॉडल के तौर पर पेश किया जाता है। यह संस्था स्कूली शिक्षा के बारे में वर्तमान में प्रभावी दृष्टिकोण को भी परिभाषित करती है।

देश की राजनैतिक व्यवस्था को समझाने के लिए पाठ्यपुस्तकें स्थानीय, राज्य व केन्द्र स्तर की विभिन्न संस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित करती हैं। इनका वर्णन एक विधि परायण ढाँचे के तहत किया जाता है तथा उन नियमों व प्रक्रियाओं पर बल दिया जाता है जिनके आधार पर ये संस्थाएँ गठित होती हैं। राजनैतिक संस्थाओं के ढाँचों का वर्णन एक सरल व लगभग मशीनी-सा काम लगता है। परन्तु इस वर्णन में कई महत्वपूर्ण विचार छिप जाते हैं जिनको समझना इन संस्थाओं की कार्यविधि को समझने के लिए बेहद ज़रूरी है। इन विचारों में लोकतंत्र की धारणा, शासन या कानूनों की आवश्यकता, विभिन्न राजनैतिक इकाइयों से सम्बन्धित श्रेणियों में विभाजित ढाँचे/प्रणालियाँ, इन ढाँचों/प्रणालियों से किसी व्यक्ति या राजनैतिक दल का सम्बन्ध आदि शामिल हैं।

इन मूलभूत अवधारणाओं का स्पष्टीकरण देने की बजाय तथा उनके बारे में तफसील से कुछ बताने की बजाय पाठ्यपुस्तकें ढाँचों के गठन व उनके कार्य सम्बन्धी नियमों व प्रक्रियाओं का सरलीकरण करती हैं। साथ ही इन ढाँचों में कार्य विभाजन साफ नहीं होता और कई बार सरकार के एक से अधिक अंग एक ही तरह के कामों को करते हैं, जैसे सरकार के कार्यकारी और वैधानिक अंग। ऐसी पेचीदगियाँ पाठ्यपुस्तकों में प्रस्तुत की गई अवधारणाओं को बच्चों के लिए कठिन बना डालती हैं और वे उन्हें पूरी तरह समझ नहीं पाते।

वास्तविक जीवन में ढाँचों का कार्य

वास्तविक जीवन में लोग (और इनमें बच्चे भी शामिल हैं) शक्ति तथा सत्ता किस प्रकार काम करती हैं यह देखते और सीखते हैं। औपचारिक प्रणालियाँ व ढाँचे इनका एक छोटा-सा हिस्सा भर होते हैं। अक्सर लोगों के राजनैतिक आचरण को समझने के लिए इन सैद्धान्तिक ढाँचों के बारे में स्पष्टता की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। लोग अपने ही तरीकों से 'काम निकलवाते/करवाते' हैं। वास्तविक राजनीति का यह लोक ज्ञान अक्सर पाठ्यपुस्तकों में ढाँचों के परिभाषित उद्देश्यों से भिन्न होता है। ऐसे में जब

ढाँचों तथा उनके कार्यों से सम्बन्धित धारणाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, तो वे भ्रम जगाती हैं, अस्पष्ट होती हैं और अपरिचित-सी जान पड़ती हैं।

पाठ्यपुस्तकों में कई अवधारणाएँ एक से दूसरी कक्षा में दोहराई गई हैं। वे सातवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में मिलती हैं और बाद में नवीं तथा दसवीं तक की कक्षाओं में दोहराई जाती हैं। ऐसी अवधारणाओं में राज्य तथा केन्द्र के स्तर पर सरकार का गठन; विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के कार्य व शक्तियाँ; संविधान लिखे जाने की प्रक्रिया तथा उसके कुछ परिच्छेदों का वर्णन शामिल हैं।

परन्तु इस अध्ययन में इन स्तरों पर सिखाई जाने वाली सभी अवधारणाओं को नहीं जाँचा गया है। हमने उन्हीं अवधारणाओं को चुना है जो अत्यावश्यक हों, तुलनात्मक रूप से सरल हों तथा हमारे हिसाब से जिन पर बच्चे चर्चा कर सकते हों। प्रायोगिक दौर के बाद, हमने जिन मुख्य क्षेत्रों को चुना वे थे: 1) सरकार का गठन, 2) सरकार के दायित्व तथा सरकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के तौर-तरीके, 3) कानून की अवधारणा तथा कानून बनाने की प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष, तथा 4) सरकार के तीन अंग और वे एक-दूसरे से किस प्रकार अलग हैं। इसके अलावा कुछ ऐसे भी क्षेत्र थे जिनको समझे बिना अन्य अवधारणाओं को समझा नहीं जा सकता। इनकी स्पष्ट समझ के बिना सरकारी ढाँचों के बारे में चर्चा नहीं हो सकती थी। ये क्षेत्र थे: 1) प्रादेशिक क्षेत्र जिनके तहत विभिन्न सरकारी या प्रशासकीय ढाँचे काम करते हैं, 2) विभिन्न ढाँचों के सन्दर्भ में प्रयुक्त कुछ पद, और 3) राजनैतिक दल।

हमने समूह चर्चाओं का तरीका अपनाया। चर्चा को दिशा देने के लिए कुछ खुले सवालों को सूचीबद्ध किया गया। इस विधि से हम प्रत्येक अवधारणा क्षेत्र को गहराई से जाँच सके और बच्चों द्वारा दिए गए स्पष्टीकरणों के आधार पर एक अवधारणा क्षेत्र से दूसरे की तरफ बढ़ सके। क्योंकि हमारा उद्देश्य बच्चों के मन में बनी सरकार की छवियों को जानना था, हमें यह आवश्यक लगा कि हम उनकी समझ को चरणों में जाँचें। व्यक्तिगत

साक्षात्कार के बदले सामूहिक चर्चाएँ चुनी गईं क्योंकि हमें लगा कि बच्चे अपने दोस्तों की मौजूदगी में अधिक सहज होंगे। साथ ही इससे ऐसी स्थिति बनेगी जिसमें बच्चे अपनी ओर से दूसरों के विचारों को चुनौती दे सकते हैं या उनमें अपने विचार जोड़ सकते हैं।

देवास ज़िले की 'श्रेष्ठतम' शहरी व ग्रामीण शालाओं के बच्चों को चर्चाओं के लिए चुना गया। खराब पढ़ाई के असर को खारिज करने के लिए न केवल 'श्रेष्ठतम' शालाओं को चुना जाना ज़रूरी था बल्कि उनके 'श्रेष्ठतम' शिक्षार्थियों को भी। शालाओं या शिक्षार्थियों को 'श्रेष्ठतम' की श्रेणी में रखना 'प्रचलित' नज़रिए पर आधारित है, जो खुद मुख्यतया स्कूलों या बच्चों के परीक्षा परिणामों के आधार पर तय होता है। पहले-पहल आयोजित चर्चाओं में, जिनमें 'कमज़ोर' या 'औसत' बच्चों को शामिल किया गया था, हमने पाया कि बच्चों को अपनी पाठ्यपुस्तक के विभिन्न तत्व याद कर पाने में कठिनाई हुई थी। वे चर्चा के दौरान अक्सर चुप बैठे रहते थे और उस वार्तालाप में शिरकत नहीं कर पाते थे जो पाठ्यपुस्तक को आधार बनाकर चल रहा होता था। हमने 'श्रेष्ठतम' शिक्षार्थियों को चुनना बेहतर समझा, क्योंकि हमारा मकसद यह जानना था कि पाठ्यपुस्तकें अपने विचार बच्चों तक किस सीमा तक सम्प्रेषित कर सकी हैं।

सैम्पल को चुनते समय एक दूसरा तत्व भी था जिसे ध्यान में रखना हमने ज़रूरी माना। यह तत्व था सामाजिक सन्दर्भ तथा राजनैतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं से परिचित होना। अतः ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही स्थितियों को चुना गया। इन दोनों स्थितियों में सामाजिक वातावरण में काफी अन्तर होता है। इसी तरह इनमें राजनैतिक संस्थाओं के विभिन्न पक्षों से बच्चों के परिचय तथा उनके साथ उनके रिश्ते में भी अन्तर होता है। सत्ता के विभिन्न केन्द्रों तथा प्रशासकीय ढाँचों से ग्रामीण बच्चों की दूरी की एक भूमिका उनके मन में सरकार की छवि बनाने में रहेगी, ऐसा हमने माना था। शहरी केन्द्रों में सरकार के अंग अधिक दृश्य होते हैं। क्या दफ्तरों, अधिकारियों और नेताओं की मौजूदगी और उनकी निकटता शहरी बच्चों

को सरकार को समझाने में मदद करती है? क्या स्थानीय राजनैतिक प्रक्रियाओं की जानकारी व उनमें भागीदारी ग्रामीण बच्चों के विचारों को अधिक स्पष्ट करती है? इन्हीं सवालों व विचारों के चलते हमने ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही श्रेणियों से सैम्पल चुने। लेकिन शहरी सैम्पल एक कस्बे (ज़िला मुख्यालय) का है; जिसका अर्थ यह है कि महानगर की स्थिति को हमने शामिल नहीं किया।

नीचे दी गई तालिका यह बताती है कि प्रत्येक श्रेणी में कितने समूह शामिल किए गए। प्रत्येक समूह चर्चा में तीन से पाँच बच्चे थे। चर्चा की अवधि बीस से चालीस मिनट की रही। प्रत्येक श्रेणी में समूहों की संख्या एक जैसी नहीं है, क्योंकि यह संख्या बच्चों की उपलब्धता तथा उन स्कूलों की सुविधा पर निर्भर थी जिनको हमने अपनी सूची में शामिल किया था।

तालिका 1: सैम्पल

परिस्थिति	**कक्षा 7**	**हाई स्कूल**	**कुल**
ग्रामीण	7 समूह; 35 बच्चे	4 समूह; 20 बच्चे	11 समूह; 55 बच्चे
शहरी	3 समूह; 9 बच्चे	6 समूह; 21 बच्चे	9 समूह; 30 बच्चे
कुल	10 समूह; 44 बच्चे	10 समूह; 41 बच्चे	20 समूह; 85 बच्चे

अध्ययन में कुछ अवधारणाओं और 'संविधान तथा सरकार' के साथ बच्चों के अनुभवों व उनके बारे में उनकी समझ का विश्लेषण किया गया है। संविधान तथा सरकार हमेशा से पाठ्यचर्या के बारे में विरासत में मिली समझ तथा नागरिक शास्त्र की तयशुदा पाठ्यचर्या का केन्द्रीय भाग रहे हैं। पाठ्यपुस्तकों के इस हिस्से के प्रति बच्चों की प्रतिक्रिया क्या रहती है? सरकार के इस तत्व का वे क्या अर्थ लगाते हैं? ये सवाल इस अध्ययन के केन्द्र में हैं। इसलिए यह नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में दी गई अवधारणाओं का एक समग्र अध्ययन नहीं है। हमने कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों व मुद्दों को लेकर बच्चों के उनसे जुड़े अनुभवों को जाँचा है। अतः बच्चों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर जो सामान्य रुझान उभरता नज़र आता है इस अध्ययन में उसकी पड़ताल की गई है, जिसमें चयनित अवधारणा क्षेत्र

उदाहरणों का काम करते हैं। नागरिक शिक्षण तथा राजनैतिक समाजीकरण के अध्ययनों में जो व्यापक नज़रिए व क्षेत्र विचारणीय रहे, उन पर इस अध्ययन में विचार नहीं किया गया है।

यहाँ एक सवाल उठता है कि क्या माध्यमिक स्तर पर पढ़ने वाले बच्चे इतने परिपक्व हैं कि वे लोकतंत्र तथा कानून की ज़रूरत जैसी अवधारणाओं को समझ सकते हैं। राजनैतिक समाजीकरण के अध्ययनों में तथा बच्चों की विश्व दृष्टि में रुचि रखने वाले लोग अक्सर यह मानते हैं कि बच्चों में एक स्तर तक यह समझ होती है कि 'सत्ता' और 'शक्ति' की कार्यविधि क्या होती है। वे बच्चों के इन अनुभवों को अन्य संस्थाओं, जैसे स्कूल, सह-समूह (peer group), परिवार, मीडिया आदि के सन्दर्भ में रख उन्हें विश्लेषित करते हैं। समाज की दूसरी संस्थाओं में सत्ता व शक्ति की इस समझ का उपयोग क्या *राजनैतिक* शक्ति व सत्ता की समझ विकसित करने के लिए किया जा सकता है? इस प्रश्न के कुछ उत्तरों को पाने का प्रयास अध्ययन

के अन्तिम भाग में किया गया है।

2. बच्चों के साथ चर्चाएँ

अध्ययन के इस भाग में हम बच्चों के साथ सरकार के तीन पक्षों पर हुई चर्चाओं को प्रस्तुत करेंगे। ये पक्ष हैं: 1) सरकार का गठन व पाठ्यपुस्तक में इसका वर्णन, 2) सरकार के कार्य और पाठ्यपुस्तकों में उसे किस तरह समझाया गया है, और 3) सरकार का ढाँचा तथा उसके तीन अंग।

सरकार का गठनः वास्तविक घटनाएँ और पाठ्यपुस्तकों का ज्ञान

सरकार के गठन पर चर्चाएँ इसलिए की गई थीं ताकि पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान को उसके सन्दर्भ में रखा जा सके तथा बच्चों के इस विषय में जो विचार हैं उनकी पड़ताल की जा सके। ये चर्चाएँ 1999 में की गई थीं। हमारी चर्चाओं से पहले एक के बाद एक तीन चुनाव हो चुके थे। दो चुनावों से केन्द्र सरकार का गठन हुआ था और तीसरा विधानसभाओं का चुनाव था। अतः हमें लगा कि बच्चे इन चर्चाओं में भागीदारी के लिए सक्षम स्थिति में थे।

चुनाव

हमने चर्चा कुछ मूलभूत प्रश्नों से प्रारम्भ की, जैसे : 1) वोट कौन दे सकता है? 2) बच्चे के चुनाव क्षेत्र का क्या नाम है? 3) उस चुनाव क्षेत्र में कौन-

कौन से उम्मीदवार खड़े हुए थे? 4) ये उम्मीदवार किन राजनैतिक दलों के थे? और 5) चुनाव किसने जीता?

बच्चों के ज़्यादातर समूहों को इन सवालों पर चर्चा करने में दिक्कत नहीं हुई। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि चुनावों को 'समसामयिक स्थानीय घटना' के रूप में समझा गया।[23] अक्सर, राजनैतिक दलों से परिचित होने के कारण बच्चे इन विचारों पर बातचीत कर सके।

अधिकांश बच्चे देश में अनेक राजनैतिक दलों के होने की बात से वाकिफ थे। लेकिन ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों के बच्चे एक सीमा तक असुविधाजनक स्थिति में थे, हालाँकि वे भी मध्यप्रदेश के दो प्रमुख राजनैतिक दलों से परिचित थे।

प्रारम्भिक वार्तालाप के बाद दूसरे स्तर के प्रश्न पूछे गए। ये सवाल थे: 1) चुने गए उम्मीदवार चुनावों के बाद कहाँ मिलते हैं (विधानसभा, राज्यसभा, लोकसभा)? 2) अपने राज्य तथा दूसरे राज्यों के कुछ चुनाव क्षेत्रों के नाम बताएँ जहाँ हाल में चुनाव सम्पन्न हुए हों।

जब पड़ोसी चुनाव क्षेत्रों पर सवाल पूछा गया तो शहरी समूहों ने इन्दौर तथा भोपाल जैसे बड़े शहरों का नाम लिया। ग्रामीण समूहों ने पहले ज़िले के आस-पड़ोस के चुनाव क्षेत्रों की पहचान की और तब बड़े शहरों का ज़िक्र किया। यद्यपि सभी समूहों के मन में यह छवि थी कि निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या बड़ी भारी होती है, फिर भी शहरी समूह इस वास्तविकता की स्पष्ट कल्पना नहीं कर पाए। वे यह साफ तौर पर नहीं समझ पाए कि किसी कस्बे या शहर के नाम वाले निर्वाचन क्षेत्र में आसपास के कई गाँव भी शामिल हो सकते हैं। फिर भी सभी समूह इस मूल विचार से परिचित

---

23. यह तथ्य कि यह चुनावी वर्ष था बहुत महत्वपूर्ण था। चुनाव की घटना को देख चुकने के बाद सवाल पूछे जाने पर बच्चों को उसके साथ जुड़े अपने अनुभवों को याद करना आसान लगा। इससे पहले साल जब विधानसभा चुनाव नहीं हुए थे, बच्चों के साथ हुए हमारे अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इस सन्दर्भ में देखें रश्मि पालीवाल, "जो गौरीशंकर को समझ में न आए", *शैक्षणिक संदर्भ*, 7, 1995.

थे कि चुनाव में 'ढेरों' निर्वाचन क्षेत्र थे और कि कई उम्मीदवार चुनाव जीते थे।

चर्चा के प्रारम्भिक दौर के बाद कई समस्याएँ उभरीं। एक सामान्य भ्रम, जो उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों में भी था, लोकसभा, राज्यसभा या विधानसभा के नाम को लेकर था। वास्तविक चुनावों की चर्चा करते समय, तब भी जब बच्चों को चुनाव के नतीजों की सही जानकारी थी, वे सभाओं के नामों को अदल-बदल रहे थे, जैसा कि नीचे दिए गए उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा:

प्रश्नः हाल में चुनाव हुए हैं। ये किस स्तर के चुनाव थे?

उत्तरः —[24]

प्रश्नः चुनाव किसलिए हुआ था?

उत्तरः राज्यसभा के लिए।

प्रश्नः राज्यसभा के लिए?

उत्तरः —

प्रश्नः चुनाव में क्या हुआ?

उत्तरः देवास में... देवास में भाजपा जीती।[25]

कई बार बच्चे लोकसभा और विधानसभा के नामों में गड़बड़ा गए। नीचे दी जा रही चर्चा में वे यह नहीं बता पाए कि चुनाव विधानसभा के थे, यद्यपि वे मुख्यमंत्री व प्रधानमंत्री के नामों से परिचित थे। बाद में उन्होंने राज्यसभा व विधानसभा शब्दों को अदल-बदलकर उपयोग किया:

प्रश्नः हाल में चुनाव हुए थे। ये चुनाव कौन से थे?

---

24. "—" चुप्पी का संकेत है।

25. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के शिक्षार्थियों के साथ हुई लम्बी चर्चा का यह एक अंश है। इस चर्चा का तथा इस पुस्तक में उद्धृत की गई शेष सभी चर्चाओं का समूचा विवरण एकलव्य के पास उपलब्ध है।

उत्तर —

प्रश्नः ये चुनाव लोकसभा के थे या विधानसभा के?

उत्तरः लोकसभा।

प्रश्नः पिछले साल भी एक चुनाव हुआ था। वह कौन सा था?

उत्तरः —

प्रश्नः अच्छा। चुनाव के बाद क्या हुआ? मुख्यमंत्री बना या प्रधानमंत्री?

उत्तरः —

(प्रश्न दोहराया गया)

उत्तरः मुख्यमंत्री।

प्रश्नः मुख्यमंत्री कौन है?

उत्तरः दिग्विजय सिंह।

प्रश्नः और प्रधानमंत्री?

उत्तरः अटल बिहारी वाजपेयी।

प्रश्नः प्रधानमंत्री किस सभा में होता है? लोकसभा में या विधानसभा में?

उत्तरः लोकसभा में।

प्रश्नः अच्छा, तो प्रधानमंत्री केन्द्र में होता है, तो मुख्यमंत्री कहाँ होता है?

उत्तरः राज्यसभा में।[26]

दरअसल हम मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री के पदनामों से उन्हें उनके सदनों से जोड़ना चाहते थे। जो बात साफ नहीं हो पा रही थी वह यह थी कि क्या बच्चे विधायक या सांसद को मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री से जोड़ पाते हैं।

---

26. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों के साथ चर्चा।

बच्चों में इस विषय पर जो भ्रम था उसका सार इस तरह का हो सकता है।

इस भ्रम से सबसे महत्वपूर्ण बात यह पता चली कि बच्चों के पास राज्यसभा की कोई खास जानकारी नहीं होती। वे अक्सर विधानसभा के लिए 'राज्यसभा' का प्रयोग कर डालते थे। यह भ्रम आंशिक रूप से इसलिए पैदा होता था कि हिन्दी में हम किसी प्रदेश को भी 'राज्य' कहते हैं। अतः बच्चों ने 'राज्य' के साथ 'सभा' को जोड़ दिया और मान लिया कि वे प्रदेश के स्तर के विधायक सदन का नाम बता रहे हैं।

बच्चे इन सदनों तथा प्रतिनिधियों के बीच का रिश्ता आवश्यक रूप से नहीं देख पाते।[27] साथ ही उन्हें यह भी पुख्ता तौर पर पता नहीं होता कि ऐसे बहुत से राज्य हैं जहाँ वास्तव में ऐसे सदन मौजूद हैं।

बच्चे विधानसभाओं से जुड़े पारिभाषिक शब्द व धारणाएँ याद कर पा रहे थे, पर वे उन्हें चयनित प्रतिनिधियों तथा मुख्यमंत्री व प्रधानमंत्री के विचार से नहीं जोड़ पा रहे थे। यद्यपि वे यह जानते थे कि देश में अलग-अलग राज्य हैं, पर यह कल्पना वे नहीं कर पाए थे कि हरेक राज्य की अपनी-अपनी अलग विधानसभा होगी।[28] इससे यह संकेत मिलता है कि बच्चे जब सातवीं से नवीं और दसवीं कक्षा तक बढ़ते हैं तो भी उनके मन में इन पारिभाषिक शब्दों की स्पष्टता नहीं बढ़ती। परन्तु चर्चा में जिस बात से

---

27. यह बात तब और साफ हुई जब हमने कानून बनाने की प्रक्रिया पर चर्चा की। इस दौरान वे प्रतिनिधियों की भूमिका को उसके सन्दर्भ विशेष में आवश्यक रूप से नहीं पहचान सके।

28. हम इस सवाल के जवाब की अपेक्षा किसी माध्यमिक स्कूल के समूह से नहीं करते, खासकर ग्रामीण क्षेत्र के किसी माध्यमिक स्कूल के समूह से, पर यह चर्चा एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के शिक्षार्थियों से हो रही थी। तीन माध्यमिक शालाओं के एक अध्ययन ने स्पष्ट कर दिया था कि ग्रामीण पृष्ठभूमि के अधिकांश बच्चों को देश में विभिन्न राज्यों के अस्तित्व की अस्पष्ट-सी जानकारी भर थी। दूसरी तरफ, अधिकतर शहरी समूह इस विचार से परिचित थे। ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों के बच्चों के लिए यह कल्पना करना कठिन था कि विभिन्न राज्यों की सांस्कृतिक प्रणालियाँ भिन्न होंगी। यद्यपि हमने गौर किया कि ग्रामीण पृष्ठभूमि के कुछ बच्चों को यह समस्या नहीं हुई, फिर भी इस विचार की चर्चा अधिक बड़े समूहों के साथ करनी होगी। मौजूदा उदाहरण में समस्या राज्यों और उनके विधायक सदनों को जोड़ पाने की थी।

छात्रों को मदद मिली थी वह थी प्रतिनिधियों और मुख्यमंत्रियों के नामों का प्रयोग:

प्रश्नः लालू प्रसाद कौन हैं – प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री?

उत्तरः मुख्यमंत्री।

प्रश्नः और कहाँ-कहाँ मुख्यमंत्री होते हैं?

उत्तरः मध्यप्रदेश में दिग्विजय सिंह हैं।

प्रश्नः मध्यप्रदेश में दिग्विजय सिंह हैं। और?

उत्तरः दिल्ली में भी हैं।

प्रश्नः भारत में कितने राज्य हैं? आपने उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश का नाम लिया है...

उत्तरः उड़ीसा, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश।

प्रश्नः इन्हें राज्य क्यों कहते हैं?...अलग-अलग राज्य क्यों बनाए गए?

उत्तरः —

प्रश्नः उनमें आपको कौन मिलेंगे?

उत्तरः —

प्रश्नः वहाँ कौन होगा...प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री या कोई नहीं?

उत्तरः पता नहीं।

प्रश्नः क्या इन सभी राज्यों में विधानसभाएँ होंगी?

उत्तरः पता नहीं।

प्रश्नः क्या उड़ीसा, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश में विधानसभाएँ होंगी?

उत्तरः पता नहीं।

प्रश्नः क्या सिर्फ मध्यप्रदेश में?

उत्तरः नहीं, दिल्ली में भी।

---

29. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

प्रश्नः हाँ, दिल्ली, बिहार और उत्तरप्रदेश में है और दूसरी जगहों पर?

उत्तरः शायद।

उत्तरः शायद...पक्का नहीं मालूम?[29]

हम बाद में (कानून बनाने पर चर्चा करते समय) देखेंगे कि इस प्रकार की दुविधा का विभिन्न सदनों की भूमिका का विवरण देते समय क्या असर पड़ता है।

मोटे तौर पर बच्चे यह जानते हैं कि कुछ लोग जनप्रतिनिधि होते हैं और वे राजनैतिक दलों से जुड़े होते हैं, पर सदनों के साथ इन प्रतिनिधियों के रिश्ते के बारे में उनमें अस्पष्टता है। ठीक इसी जगह पाठ्यपुस्तकों की भूमिका महत्वपूर्ण बन जाती है। पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न सदनों का जो वर्णन दिया जाता है उससे बच्चों को यह समझ आना चाहिए कि स्थानीय घटनाएँ और लोग किस प्रकार सरकार बनाने में योगदान देते हैं। हम यह दिखाएँगे कि यह महत्वपूर्ण विचार पाठ्यपुस्तकों में उस समय किस तरह छूट जाता है जब वे सरकार के गठन की प्रक्रिया की जानकारी देती हैं।

पाठ का विश्लेषण

सातवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में सरकार के गठन की प्रक्रिया समझाते हुए लिखा गया है:

> हमने देखा कि अधिकांश सदस्य किसी पार्टी की टिकट पर चुने जाते हैं। जिस राजनैतिक दल को लोकसभा के सदस्यों के बहुमत का समर्थन मिलता है, राष्ट्रपति उसे सरकार बनाने को कहते हैं। आगामी अध्यायों में हम यह देखेंगे कि किस प्रकार प्रधानमंत्री

30. देखें डी. एस. मुले, ए. सी. शर्मा व सुप्ता दास, *हाउ वी गवर्न आवरसेल्वसः ए टैक्स्टबुक ऑफ सिविक्स फॉर क्लास VII*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1988; पुनर्मुद्रित 1998, पृष्ठ 26.

और उनके मंत्री सरकार बनाते हैं।[30]

यद्यपि उपरोक्त पंक्तियाँ यह बताती हैं कि "अधिकांश सदस्य किसी पार्टी की टिकट पर चुने जाते हैं," फिर भी पाठ्यपुस्तक में चुनावी प्रक्रिया का स्पष्टीकरण काफी कमज़ोर है। (हमने समूचे पैराग्राफ को स्थानाभाव के कारण उद्धृत नहीं किया है।) इस सन्दर्भ में यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि बच्चे हमारे सवालों पर इसलिए आसानी से प्रतिक्रिया कर सके क्योंकि उसी साल चुनाव हुए थे।

ऊपर जिन "आगामी अध्यायों" का ज़िक्र किया गया है उनमें से एकमात्र उल्लेख जो हमें मिला उसे आगे उद्धृत किया जा रहा है। इसके अलावा केन्द्र में सरकार के गठन की कोई चर्चा पाठ्यपुस्तक में नहीं है। "कानून कौन क्रियान्वित करता है" नामक अध्याय में प्रक्रिया का फिर से उल्लेख है। यह अध्याय मुख्यतया राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव की चर्चा करता है और उनकी शक्तियों की एक लम्बी सूची देता है। अतः बच्चों के लिए सरकार के गठन सम्बन्धी जानकारी पर गौर करना या शिक्षकों के लिए उसे स्पष्ट तौर पर रेखांकित करना कठिन बन जाता है। इस पैराग्राफ में भी अन्य अवधारणाओं पर बल अधिक दिया गया लगता है और किसी कारण प्रधानमंत्री के चयन की प्रक्रिया पर खास जानकारी नहीं मिलती है:

> राष्ट्रपति इन सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री व मंत्रिमण्डल की सलाह पर करते हैं। प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति अन्य मंत्रियों को नियुक्त करते हैं। मंत्रियों की तीन श्रेणियाँ होती हैं – कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री व उपमंत्री। सभी महत्वपूर्ण निर्णय कैबिनेट मंत्रियों द्वारा लिए जाते हैं। कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णय अन्य मंत्रियों के लिए बाध्यकारी होते हैं। कैबिनेट की बैठक

---

31. उपरोक्त, पृष्ठ 35.

32. भारत का संविधान (1 जून 1996 के अनुसार), नई दिल्ली, 1996.

सामान्यतः सप्ताह में एक बार होती है।[31]

यहाँ संविधान के अनुच्छेद 75 से साम्य स्पष्ट नज़र आता है, जिसमें कहा गया है: "प्रधानमंत्री राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह से करेंगे।" [32]

एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक में मुख्यमंत्री की नियुक्ति का जो वर्णन है उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है। यहाँ जो बात स्पष्ट नज़र आती है उसका सम्बन्ध राज्यपाल की 'शक्ति' (या इस शक्ति की नामौजूदगी) से है। बहुमत की धारणा का भी चलते-चलते ही उल्लेख मात्र किया गया है। इस अनुच्छेद में एक उल्लेख गठबन्धन सरकार का भी है। परन्तु अगर बच्चे उस स्थिति में भी सरकार के गठन की प्रक्रिया को नहीं समझ सकते जब किसी एक दल का बहुमत हो, तो वे गठबन्धन सरकार के गठन की प्रक्रिया कैसे समझ सकते हैं? अतः पाठ्यपुस्तक के अधिकांश हिस्सों की तरह यहाँ भी बिना पर्याप्त व्याख्या के कई विचार एक साथ जोड़कर प्रस्तुत कर दिए गए हैं:

> राज्यपाल मुख्यमंत्री की सहायता व सलाह से काम करते हैं। राज्यपाल अपनी मर्ज़ी से किसी भी व्यक्ति को मुख्यमंत्री के पद पर नियुक्त नहीं कर सकते। जिस पार्टी को बहुमत मिला हो उसी के नेता को वे मुख्यमंत्री नियुक्त करते हैं। अगर किसी भी राजनैतिक दल को बहुमत न मिला हो तो दो या दो से अधिक दल मिलकर एक नेता चुनते हैं। ऐसी मिली-जुली सरकार को गठबन्धन सरकार कहा जाता है। इस प्रकार चुने गए नेता को राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाता है। जब मुख्यमंत्री की नियुक्ति हो जाती है तो उसकी सलाह से राज्यपाल अन्य मंत्रियों को चुनते हैं।[33]

उच्च माध्यमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तक में दुनिया में प्रचलित विभिन्न प्रकार के चुनावों पर एक पूरा पाठ है। साथ ही यह पाठ्यपुस्तक प्रत्यक्ष व

---

33. देखें मुले, पूर्वोक्त, पृष्ठ 39-40.

अप्रत्यक्ष चुनावों के विचार को भी सामने रखती है। पाठ्यपुस्तक में इस विषय में जो अनुच्छेद है उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

> प्रधानमंत्री का चुनाव अप्रत्यक्ष होता है, पर उसकी पार्टी को लोग प्रत्यक्ष रूप से चुनते हैं। प्रधानमंत्री उस दल का नेता होता है जिसे लोकसभा के बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन मिला हो। वैकल्पिक स्थिति में वह कुछ दलों द्वारा आम सहमति से चुना गया व्यक्ति भी हो सकता है।[34]

मुख्यमंत्री की नियुक्ति की प्रक्रिया समझाते हुए इसी पाठ्यपुस्तक में कहा गया है:

> मुख्यमंत्री और मंत्रिमण्डल की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्यपाल सामान्यतः उस दल के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करते हैं जिसे बहुमत प्राप्त हो या फिर जो राजनैतिक दलों के किसी गठबन्धन का नेता हो। मुख्यमंत्री की सलाह से मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों को नियुक्त किया जाता है।[35]

जैसा कि हम देख सकते हैं, उपरोक्त वर्णन ज़रूरत से ज़्यादा संक्षिप्त है और इसमें स्पष्टीकरणों का अभाव है तथा वह अवधारणाओं को ठोस छवियों से नहीं जोड़ पाता। यह उस प्रकार का वर्णन नहीं लगता जो बच्चों को चुनाव और सरकार के गठन की प्रक्रिया को समझने में मदद कर सके। अगर बच्चे वास्तव में इस प्रक्रिया को समझ गए हों तो वे वास्तविक घटनाओं या काल्पनिक स्थितियों को समझाने के लिए अपने ज्ञान का उपयोग कर पाएँगे। परन्तु, जैसा कि हम पहले ही दिखा चुके हैं और आगामी पृष्ठों में फिर दर्शाएँगे, इन पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने वाले बच्चे ऐसा

---

34. सुदीप्ता कविराज, *इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन एंड गवर्नमेंट: ए टैक्स्टबुक इन सिविक्स फॉर क्लास IX एंड X*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 40.

35. उपरोक्त, पृष्ठ 46.

नहीं कर पाते।

'बहुमत' और 'दल का नेता'

हमारे अध्ययन में यह जाँचने की चेष्टा की गई कि क्या बच्चे पाठ्यपुस्तकों से पाए 'बहुमत' के ज्ञान को वास्तविक या काल्पनिक स्थितियों पर लागू कर सकते हैं या नहीं।[36] हमने देखा कि अधिकांश समूह जो वास्तविक घटनाक्रम का वर्णन कर सकते थे, वे भी काल्पनिक परिस्थितियों का विश्लेषण नहीं कर सके। वे 'बहुमत' तथा 'बहुमत दल का नेता' जैसे दो महत्वपूर्ण विचारों की व्याख्या नहीं कर सके। वास्तविक घटनाओं का खुलासा उन्होंने अपने अनुभव से पाया था, पाठ्यपुस्तकों से नहीं, और अक्सर राजनैतिक दलों की अपनी समझ के चलते वे वास्तविक स्थितियों का वर्णन कर पाए थे। इस सन्दर्भ में बच्चों से हुई कुछ चर्चाओं को देखने की अब हम चेष्टा करेंगे।

नीचे जिस समूह से चर्चा की जा रही है वह (बीस समूहों में) अकेला समूह था जिसके छात्रों ने कहा कि सदन में बहुमत सिद्ध करना पड़ता है। सरकार बनाने के लिए दूसरे दलों का सहयोग भी ज़रूरी बताया गया। इस समूह के शिक्षार्थियों ने कहा कि जिस दल के पास सबसे ज़्यादा सीटें हों उसे सरकार बनाने के लिए 'आमंत्रित' किया जाएगा और तब उसे दूसरों का सहयोग ले बहुमत साबित करना पड़ेगा। यह जानकारी उनकी पाठ्यपुस्तक

---

36. हमने पहले से जो प्रश्न तैयार किया था उसमें तीन काल्पनिक दलों के नाम थे और उनमें से प्रत्येक ने चुनाव में कितनी सीटें जीतीं इसका ज़िक्र था। एक चौथा समूह भी था जिसमें 'अन्य' दल या प्रतिनिधि थे। तीनों दलों में से प्रत्येक के पास लगभग एक तिहाई सीटें थीं और 'अन्य' की संख्या नगण्य थी। इसी प्रकार की एक तालिका मध्यप्रदेश विधानसभा के 1998 के चुनाव की वास्तविक स्थिति बताने के लिए भी बनाई गई थी। तालिका को देखकर बच्चों को सरकार के गठन का वर्णन करना था। काल्पनिक स्थिति जानबूझकर ऐसी रखी गई थी जिसमें किसी भी पार्टी का बहुमत न हो ताकि यह जाना जा सके कि बच्चे केन्द्रीय विचारों को कितना समझे। काल्पनिक चुनाव में दलों के नाम और उनकी सीटें थीं: विकास पार्टी/110; विलास पार्टी/116; विप्लव पार्टी/105; अन्य/9; कुल/340.

में नहीं दी गई है। बच्चों को पता था कि सरकार बनाने के लिए कम से कम एक तयशुदा संख्या की सीटें होना ज़रूरी है, जैसे पिचहत्तर फीसदी या दो-तिहाई या आधी, पर समूह सही संख्या पर एकमत नहीं था:

(हम उन्हें पहले से तैयार सवाल देते हैं, तब उसका खुलासा कर उसे और स्पष्ट करते हैं।) मान लो स्थिति कुछ ऐसी है (कार्ड दिखाते हुए)। यह एक काल्पनिक तालिका है। तीन राजनैतिक दल हैं। इन दलों के लोग चुनाव में जीते हैं।

प्रश्नः सरकार कौन बनाएगा?

उत्तरः विलास दल।

प्रश्नः क्यों?

उत्तर 1: उसके पास ज़्यादा सीटें हैं।

उत्तर 2: जिसके पास ज़्यादा सीटें हों, उसे ही सरकार बनाने को कहा जाता है।

प्रश्नः और...?

उत्तर 2: वह अपना बहुमत साबित करेगा।

प्रश्नः कैसे?

उत्तरः दूसरे दलों से सहयोग लेकर।

प्रश्नः अगर दूसरे दल सहयोग न दें तो?

उत्तरः तो फिर जिसके पास 116 सीटें हैं वह बनाएगा। वह दूसरे समूह का सहयोग माँगेगा और अगर वे न दें तो...

प्रश्नः उसे सहयोग की ज़रूरत क्यों है?

उत्तरः वह बिना सहयोग नहीं बना सकेगा।

प्रश्नः क्यों?

उत्तरः सीटों की एक तयशुदा संख्या होती है।

प्रश्नः वह कितनी है?

उत्तरः एक तिहाई।

प्रश्नः 340 का एक तिहाई कितना होगा...300 का 100...तो यह 113 से अधिक है। तो, क्या वे बना सकते हैं? (बच्चों ने हमारे साथ ही हिसाब लगाया।)

उत्तर 2: तब तो आपको 75 प्रतिशत की ज़रूरत पड़ेगी।

प्रश्नः ऐसा है क्या?...क्या 75 प्रतिशत की ज़रूरत होती है?

उत्तर 3: आधे से अधिक की।

प्रश्नः कितनी सीटों की ज़रूरत पड़ती हैः आधे से ज़्यादा, एक तिहाई या 75 प्रतिशत की?

उत्तरः सवाल फिर से दोहराइए।

प्रश्नः देखो, 340 सदस्य हैं और तीन राजनैतिक दल हैं जिनके पास 110, 116 और 105 सीटें हैं और कुछ अन्य सीटें भी हैं। तो अब किसे सरकार बनानी चाहिए?

उत्तरः दो दल मिलकर बनाएँगे। तीन में से दो दल एक-दूसरे को सहयोग देंगे।

प्रश्नः अगर दो दल साथ न मिल सकें?

उत्तरः तो तीसरा इसकी कोशिश करेगा। अन्यथा फिर से चुनाव होंगे।

प्रश्नः क्यों?

उत्तरः —

प्रश्नः इसका आधे से अधिक क्या होगा?

उत्तर 1: 340.

उत्तर 2: 170 के आसपास तो किसी के पास नहीं हैं।

प्रश्नः पहले ज़रा बात साफ कर लें। उसने कहा 75 प्रतिशत और दूसरों ने कहा एक तिहाई, आधे से ज़्यादा।

उत्तरः दो तिहाई।

37. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों के साथ चर्चा।

प्रश्नः 340 का दो तिहाई कितना होगा?

उत्तरः —

प्रश्नः सरकार बनाने के लिए कितनी सीटों की दरकार है?

उत्तरः आधे से ज़्यादा।[37]

बच्चे एक से दूसरा जवाब बदलते रहे। दरअसल वे महज़ अनुमान लगा रहे थे। उनके बयानों में सबसे बड़ा दल भी दूसरे दलों से समर्थन लेने की चेष्टा कर रहा था। कुछ छात्रों की धारणा थी कि 'समर्थन' बेहद महत्वपूर्ण था; वह न मिलने पर फिर से चुनाव किए जाएँगे। यह इस बात का उदाहरण था कि बच्चों ने हाल में हुए चुनावों के अपने अनुभव का उपयोग चर्चा में किया। कई बच्चों की धारणा थी कि सबसे बड़े राजनैतिक दल का बहुमत होता है या फिर वह किसी न किसी तरह बहुमत पा लेता है।

सरकार बनाने की प्रक्रिया का अमूमन जो वर्णन छात्र देते हैं वह नीचे उद्धृत बातचीत में नज़र आता है:

(सरकार के गठन पर पहले से तैयार प्रश्न पढ़ा जाता है।)

प्रश्नः अब, यह बताओ कि सरकार कौन बनाएगा?

उत्तरः सर, इस स्थिति में कौन किसको समर्थन दे रहा है?

प्रश्नः (हम छात्र के प्रश्न से चौंक जाते हैं।) वाह!

उत्तरः समर्थन कौन दे रहा है?

प्रश्नः समर्थन की ज़रूरत क्यों है?

उत्तरः अगर दो लोग मिलकर सरकार बनाना चाहते हैं...

प्रश्नः अगर दोनों अलग-अलग हैं...?

उत्तरः इस 116 वाले समूह का बहुमत है।

प्रश्नः क्यों?

उत्तरः क्योंकि उनके ही ज़्यादा उम्मीदवार जीते हैं।

प्रश्नः दो समूहों को साथ क्यों मिलना होगा?

उत्तरः अगर वे मिलना चाहते हैं तो साथ मिल जाएँगे।

प्रश्नः अगर न मिलें तो...?

उत्तरः क्या वे अलग हैं?

प्रश्नः हाँ।

उत्तरः तब यह विकास पार्टी।

प्रश्नः क्यों?

उत्तर 1: उनके उम्मीदवार ज़्यादा हैं।

उत्तर 2: उनके पास ज़्यादा हैं।

प्रश्नः क्या अधिक उम्मीदवारों का मतलब बहुमत होता है?

उत्तर 1: हाँ।

उत्तर 2: नहीं सर। ज़्यादा उम्मीदवार जीते हैं। 116 लोग और तब बाकी हैं — 110, 105। अब...105, 110 और 116। सबसे ज़्यादा 116 हैं। जिसको सबसे ज़्यादा मिली हैं, सबसे बड़ा, उन्हीं में से एक चुना जाएगा। जिसके पास सबसे अधिक संख्या है, वह बहुमत दल का नेता बनेगा। वही कैबिनेट बनाएगा। वे उसके नीचे होंगे। वह उनमें अलग-अलग क्षेत्र [विभाग] बाँटेगा। वह अपने नीचे वालों का खयाल रखेगा।[38]

इस वार्तालाप में अचरज की बात यह थी कि एक बच्चे ने जानना चाहा कि समर्थन कौन दे रहा है। विभिन्न चर्चाओं में पहली बार किसी ने ऐसा सवाल किया था। इससे पहले पाठ्यपुस्तक में दी गई जानकारी की बात करते समय छात्रों ने कहा था कि जिस दल का बहुमत हो उसका नेता

38. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल की सातवीं कक्षा के बच्चों के साथ चर्चा।

मुख्यमंत्री बनता है, और अब एक बच्चा पूछ रहा था कि "समर्थन कौन दे रहा है।" अगर वह पाठ्यपुस्तक में दिए गए स्पष्टीकरण के विषय में आश्वस्त था, तो क्या किसी घटना ने उसे यह प्रश्न करने पर विवश किया था? दरअसल ऐसी ही किसी प्रतिक्रिया की उम्मीद में, जिसमें बच्चे यह कहें कि किसी भी दल के पास स्पष्ट बहुमत नहीं है, हमने यह प्रश्न बनाया था।

परन्तु कुछ वाक्यों के बाद यह साफ हो गया कि इस बच्चे के लिए सरकार बनाने के लिए बहुमत आवश्यक नहीं था। वास्तव में उसके मन में इस विषय पर एक छवि बनी हुई थी जो उसने पाठ्यपुस्तक के बाहर से बनाई थी। *(चर्चा के अन्त में उसने बताया कि वह नियमित रूप से अखबार पढ़ता है।)* रोज़मर्रा की दुनिया में कहा जाता है कि सरकार समर्थन से ही बनती है। यही बात उसने आत्मसात कर ली थी। जब हमने उससे जानना चाहा कि समर्थन क्यों ज़रूरी है और अगर वह न मिले तो क्या होगा, तो उसका जवाब सामान्य तौर पर दिया जाने वाला रहा जिसके अनुसार जिस पार्टी के पास अधिकतम सीटें हों वही सरकार बनाएगी।

शहरी विद्यार्थियों के एक समूह के साथ बातचीत में मुख्यमंत्री कौन बनेगा यह तय करने के विषय में दो भिन्न नज़रिए उभरे: 1) जिस दल के पास बहुमत हो उसके चयनित प्रतिनिधि आपस में मतदान कर तय करते हैं कि कौन मुख्यमंत्री बनेगा। 2) संसद यह तय करती है कि किसी राज्य में सरकार कौन बनाएगा। यह दूसरा जवाब सम्भवतः इस धारणा से उपजा था कि सरकार पदानुक्रम वाली एक व्यवस्था है, और कि सदनों का बनाया जाना उसका हिस्सा है। इन विद्यार्थियों से हुई चर्चा का जो हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है वह स्पष्ट करता है कि पाठ्यपुस्तक के सम्बन्धित भागों को सही-सही याद रख पाने के बावजूद बच्चों की समझ इतनी गहरी न थी कि वे एक-दूसरे के विरोधाभासी बयानों पर सवाल उठा सकें:

प्रश्नः हाल में कुछ चुनाव हुए थे।

उत्तरः पिछली सरकार का समय खत्म हो गया था। इसलिए उसे...हम कह सकते हैं कि हर पाँच साल बाद सरकार

बदलेगी।

प्रश्नः क्या हुआ? उसका नतीजा क्या निकला?

उत्तरः कांग्रेस ने ज़्यादातर सीटें जीतीं।

प्रश्नः कितनी?

उत्तरः हमें पता नहीं।

प्रश्नः नतीजों के बारे में तुम्हें कैसे पता चला?

उत्तरः एक्ज़िट पोल (exit poll) से।

प्रश्नः आपने देखा? क्या होता है?

उत्तरः कई लोगों को बुलाया गया और बातचीत हुई।

प्रश्नः सरकार कैसे बनाई गई?

उत्तरः जैसे...?

प्रश्नः मुख्यमंत्री कौन है?

उत्तरः ...मध्यप्रदेश में?

प्रश्नः हाँ।

उत्तरः दिग्विजय सिंह।

प्रश्नः उन्हें किसने बनाया?

उत्तरः कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने तय किया कि कौन मुख्यमंत्री होगा।

प्रश्नः जैसे...?

उत्तरः जिन सदस्यों ने सीटें जीती थीं उन्होंने उसे चुना।

प्रश्नः वे एक साथ बैठे और दिग्विजय सिंह को चुना?

उत्तरः हाँ, सर।

प्रश्नः (तैयार कार्ड से विभिन्न पार्टियों को मिली सीटों की स्थिति समझाई जाती है।) यह कैसे तय किया गया कि कांग्रेस सरकार बनाएगी?

उत्तरः दिल्ली में प्रधानमंत्री ने तय किया कि मुख्यमंत्री उन्हें ही बनना है। उन्होंने संसद में तय किया।

प्रश्नः विधानसभा में क्या होगा इसका निर्णय संसद में होता है?

उत्तरः मुख्य आदेश तो वहीं से आते हैं।

प्रश्नः विधानसभा में क्या होता है?

उत्तरः चुनावों के बाद?

प्रश्नः हाँ, चुनावों के बाद।

उत्तरः मुख्य बँटवारा होता है...यह मंत्रालय किसको मिलेगा...जैसे शिक्षा मंत्री...कौन...

प्रश्नः निर्णय कौन लेता है?

उत्तर 1: मुख्यमंत्री।

उत्तर 2: वे सब कैबिनेट में होते हैं, है ना? शिक्षा मंत्री, परिवहन मंत्री, वित्त मंत्री, रेल मंत्री, यह सब प्रधानमंत्री तय करते हैं। और वे ही ज़िम्मेदारियाँ बाँटते हैं।[39]

सरकार के गठन पर हुई इन चर्चाओं के बारे में कुछ महत्वपूर्ण अवलोकन नीचे दिए जा रहे हैं।

'बहुमत' की अवधारणा कई दूसरे सन्दर्भों में भी सामने आती है, जैसे जब कोई बिल कानून बनता है। इन दोनों ही स्थितियों में आम तौर पर बच्चों ने बहुमत के विचार को 'सबसे बड़े' समूहों के साथ जोड़कर देखा, न कि उन समूहों के साथ जिनके सदस्यों की संख्या समस्त संख्या का दो-तिहाई या आधे से अधिक हो। यद्यपि उच्च माध्यमिक स्कूलों के कई विद्यार्थियों ने इन विचारों से जूझने की कोशिश की, माध्यमिक स्तर के अधिकांश बच्चे इस विचार से आगे नहीं बढ़े कि बहुमत सबसे बड़े समूह का होता है। इस तरह बच्चे न केवल इन विधिवादी स्पष्टीकरणों को याद नहीं कर पाते, वे यह भी नहीं समझ पाते कि ऐसी प्रणाली अपनाई ही क्यों गई। पाठ्यपुस्तकें

39. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

यह साफ ही नहीं करतीं कि लोकतंत्र में बहुमत क्यों ज़रूरी है। सम्भवतः यही कारण है कि वे ऐसी संख्याओं को महज़ जानकारी मान बैठते हैं।

इसी प्रकार 'बहुमत दल के नेता' का विचार भी बच्चों को स्पष्ट नहीं है। वास्तविक घटनाक्रम का विश्लेषण करते समय वे मौजूदा मुख्यमंत्री का नाम तो बता देते थे, परन्तु चुनावों के बाद उसे पार्टी का नेता चुना गया होगा ऐसा नहीं सोच पाते थे। मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री को राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त करने की प्रक्रिया के बारे में परम्परागत पाठ्यपुस्तकें जो कुछ बताती हैं वह महज़ 'पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान' रह जाता है। ऐसी नियुक्तियों की वास्तविक प्रक्रिया (जो मीडिया में देखी जाती है) का रिश्ता वे पाठ्यपुस्तकों की जानकारी से जोड़ नहीं पाते।

उच्च माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों के समूहों में अक्सर गठबन्धन का विचार और राजनैतिक दलों के नेताओं की भूमिका सरकार के गठन के वर्णन में मुख्य तत्वों की तरह उभरे। इससे लगा कि गत वर्ष की घटनाओं की कुछ छाप इन समूहों के मन पर अब तक थी। परन्तु क्योंकि ऐसे वर्णनों को पाठ्यचर्या में कोई स्थान ही नहीं दिया जाता, बच्चे पाठ्यपुस्तक में वर्णित 'नियमों' को विशेष स्थितियों पर लागू नहीं कर सके थे। ऐसी स्थितियों में राजनैतिक दलों के सम्बन्ध में उनकी जो धारणाएँ थीं उन्हीं के सहारे वे घटनाक्रम को समझने की कोशिश करते रहे। दुर्भाग्य से, पाठ्यपुस्तकों में सरकार के गठन के विषय में जो वर्णन दिया जाता है वह मौजूदा राजनीति की समझ नहीं दे पाता। अतः ये बच्चे भी "बहुमत दल का नेता सरकार बनाता है" जैसे रटे हुए जुमले से आगे नहीं बढ़ सके।

नियमों पर इतना ज़ोर होने के कारण 'ज़मीनी राजनीति' (real politik) के तत्वों की उपेक्षा होती है। पाठ्यपुस्तकें वास्तविक परिस्थितियों से विचार लेकर नहीं आतीं, न ही वे सम्भावित उल्लंघनों की चर्चा या विवेचन करती हैं। अमूर्त्त रूप से अवधारणाओं की बात करना बच्चों में आवश्यक स्पष्टता नहीं लाता। सरकार की गठन प्रक्रिया जैसी किसी अवधारणा की चर्चा अगर उससे जुड़ी घटनाओं और राजनैतिक दलों की भूमिका के बिना

की जाएगी तो बच्चों के मन में उस अवधारणा की ठोस छवियाँ नहीं बन पाएँगी। चर्चाओं के बाद जब हमने बच्चों के प्रश्नों के जवाब दिए तो हमने पाया कि उच्च माध्यमिक स्कूलों के बच्चे इन विचारों को इसलिए समझ सके क्योंकि उन्हें वास्तविक घटनाक्रम के बारे में कुछ जानकारी थी। प्रक्रिया के वर्णन में यह जानकारी मददगार सिद्ध हुई।

सरकार के कार्यः लोक कल्याण या विधि निर्माण?

सरकार के तीन अंगों के सन्दर्भ में उसके कार्यों को पाठ्यपुस्तकें संक्षेप में इस प्रकार रखती हैंः कानून का निर्माण, कानून लागू करना, और यदि कानूनों का उल्लंघन हो तो न्याय करना।

पाठ्यपुस्तकें सरकार के कार्यों का वर्णन उसके तीन अंगों के ढाँचे के अनुसार करती हैं और पदानुक्रम में सबसे शीर्ष पर नियुक्त अधिकारियों की शक्तियों व कार्यों को समझाती हैं। परन्तु किसी व्यक्ति और राज्य के बीच अन्तरक्रिया अधिकांशतः प्रशासन के निचले स्तर के अधिकारियों के माध्यम से होती है। अतः सम्भावना यही है कि बच्चे इन अधिकारियों की भूमिका से परिचित हों। इस प्रकार के अधिकारियों में शिक्षक, पटवारी, सरकारी डॉक्टर, पुलिस, तहसीलदार तथा डाकिया आदि शामिल हैं। इनमें से कई अधिकारी सरकार के कल्याणकारी कार्य भी करते हैं। परन्तु पाठ्यपुस्तकें सरकार के हिस्से के तौर पर इन अधिकारियों के कार्यों के विषय में लगभग चुप्पी लगा जाती हैं। कहने का अर्थ यह नहीं है कि पाठ्यपुस्तकें सरकार की कल्याणकारी गतिविधियों के बारे में पूरी तरह मौन हों। कक्षा 6 व 8 की पाठ्यपुस्तकों में इनका पर्याप्त उल्लेख मिलता है, जहाँ वे कहती हैं कि ग्रामीण समाज को उसके "आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन" से ऊपर "उठाना" आवश्यक है। वे सरकार के "निरक्षरता"

---

40. नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों की अधिकांश आलोचनाएँ, जिनका पहले अध्याय में उल्लेख किया गया है, इन विचारों का उपयोग कर यह दर्शाने की चेष्टा करती हैं कि किस प्रकार ये पाठ्यपुस्तकें समाज के किन्हीं खास तबकों के विरुद्ध पूर्वाग्रह-युक्त हैं।

उन्मूलन, "बढ़ती आबादी" की रोकथाम व अन्य "सामाजिक कुरीतियों" के उन्मूलन की पहलों का बखान करती हैं। परन्तु जब सरकारी संस्थाओं के कार्यों की चर्चा की जाती है तो वहाँ सरकार की कल्याणकारी भूमिका का खास उल्लेख नहीं किया जाता। पाठ्यपुस्तकों से यही आभास होता है कि सरकार की एकमात्र भूमिका कानून बनाने की ही है और उसकी अन्य भूमिकाओं की उपेक्षा की जाती है।[40]

कार्य

अध्ययन के दौरान हमने यह तलाशना चाहा कि पाठ्यपुस्तकों द्वारा विधि निर्माण की जो छवियाँ गढ़ी जाती हैं क्या वे बच्चों या वयस्कों के भी रोज़मर्रा के जीवन से बनी छवियों के समान हैं। क्या बच्चे सामान्यतः सरकार और उसकी संस्थाओं को केवल कानून बनाने से जोड़ते हैं या वे उन्हें 'कल्याणकारी गतिविधियाँ व सेवाएँ उपलब्ध करवाने' से भी जोड़ते हैं?

इस सन्दर्भ में जन प्रतिनिधियों/मंत्रियों/विधानसभा व संसद/सरकार के कार्यों पर बच्चों से हुई चर्चाएँ उपयोगी हो जाती हैं। जब भी बच्चों के सामने बात खुले रूप में रखी गई तो उनकी प्रतिक्रिया हमेशा केवल कल्याणकारी गतिविधियों के विषय में रही, या फिर उनकी प्रतिक्रिया में बहुत ही व्यापक विचार शामिल नज़र आए, जैसा नीचे दी जा रही बातचीत से स्पष्ट होता है:

प्रश्नः सरकार क्यों बनाई जाती है?

उत्तर 1: देश के लिए...

उत्तर 2: सरकार की लोगों के प्रति ज़िम्मेदारियाँ होती हैं।

प्रश्नः कौन सी ज़िम्मेदारियाँ?

---

41. एक ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

उत्तर: लोगों की देखभाल करने की।

प्रश्न: कैसे?

उत्तर: उनकी रक्षा करने की।[41]

जब बच्चों से कहा गया कि "देखभाल करने" के विचार को वे खोलकर बताएँ तो वे कल्याणकारी गतिविधियाँ परिभाषित करने लगे। बच्चों के अधिकांश जवाब इस प्रकार के थे:

प्रश्न: मंत्रियों को भूल जाओ। यह बताओ कि ये विधायक, जिन्होंने चुनाव जीते हैं, वे क्या करते हैं?

उत्तर: अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करते हैं...वे जहाँ से चुनाव जीते हैं उस क्षेत्र का उन्हें विकास करना होता है।

प्रश्न: क्या वे और कुछ भी करते हैं?

उत्तर: सड़कें बनाते हैं और ऐसे दूसरे काम करते हैं[42]...

हम जाँचना चाहते थे कि क्या बच्चे कानून बनाने की बात इसलिए 'छोड़ रहे हैं' क्योंकि उन्हें पाठ्यपुस्तक में दी गई जानकारी उस वक्त 'याद' नहीं आई। हमने जो प्रश्न पहले से तैयार किया था वह इसी मकसद से बनाया गया था। जो सूची बनाई गई थी उसमें पाँच विचार शामिल थे जिनमें से बच्चों को अपने प्रतिनिधि की सबसे महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी चुननी थी और उसे क्यों चुना यह भी स्पष्ट करना था।[43] हमने पाया कि बच्चों ने आम तौर पर सूची में दर्ज पहली दो कल्याणकारी गतिविधियों में से एक को चुना। जिन थोड़े से समूहों ने कानून बनाने को चुना उनका स्पष्टीकरण यह था कि कल्याणकारी गतिविधियों को लागू करने के लिए कानून बनाना ज़रूरी होता है।

आश्चर्य नहीं कि सरकार के कार्यों को लेकर जो छवि जन-मानस में पैठी

---

42. एक ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

43. सूची में शामिल विचार थे: 1) सड़कें बनाना तथा पानी की व्यवस्था करना। 2) सदन में अपने क्षेत्र की समस्याएँ रखना। 3) सदन में प्रश्न उठाना। 4) अपनी पार्टी के विचार सदन में रखना। 5) सदन में कानून बनाने सम्बन्धी चर्चाओं में भागीदारी करना।

है वह उसकी कल्याणकारी भूमिका की है। विडम्बना यह है कि ठीक यही कारण आन्ध्रप्रदेश के विधायकों ने विधानसभा की बैठकों में अपनी नामौजूदगी के स्पष्टीकरण के लिए भी सामने रखा था। वे भी स्वयं को 'विधि निर्माता' की बजाय 'कल्याण करने वालों' के रूप में देख रहे थे:

> राज्य विधानसभा में उनके जैसे दर्जन भर अन्य सदस्य भी हैं जिन्होंने अब तक अपना मुँह नहीं खोला है...। विधानसभा के दस्तावेज़ दर्शाते हैं कि वे केवल तब ही बोले थे जब दिसम्बर 1994 में उन्होंने विधायकों के रूप में शपथ ली थी। तब से विधानसभा के 14 सत्र आयोजित हो चुके हैं जो 191 दिनों तक चले। विधानसभा सत्रों को टेलिविज़न पर दिखाने की व्यवस्था भी इन विधायकों को भागीदारी करने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर सकी है।
>
> विधायक इस आरोप को कि वे अपनी भूमिका गम्भीरता से नहीं ले रहे खारिज करते हैं। *"मुझे सदन में बोलने की क्या ज़रूरत है जब मैं अपने लोगों की देखभाल करना जानता हूँ"*, मूला रेड्डी तर्क करते हैं।
>
> ...नारायणखेड़ की सीट जीतने के बाद श्री विजयपाल रेड्डी ने कसम खाई कि वे उसे दूसरी बार भी जीतेंगे। यह दावा बड़बोलापन ही है क्योंकि अब तक कोई भी इस सीट को लगातार दो बार नहीं जीत पाया है। *"इसलिए, मैं हैदराबाद में नज़र नहीं आता, विधानसभा से दूर रहता हूँ और अपने पिछड़े क्षेत्र के विकास पर*

---

44. ए. के. मेनन का आलेख "मम इज़ द वर्ड", *इण्डिया टुडे*, 7 सितम्बर 1998 (तिरछे छपे शब्दों पर ज़ोर मूल आलेख में दिया गया है)। यह सच है कि विधायक बिरले ही इस तथ्य पर गर्व करते हैं कि वे कानून के निर्माता हैं। इसके बदले वे उन कल्याणकारी गतिविधियों की सूचियाँ गिनाने लगते हैं जो उन्होंने कीं। किसी भी सरकार के सूचना निदेशालय व जन सम्पर्क विभाग के विज्ञापनों पर नज़र डालते ही साफ हो जाता है कि ठीक यही टिप्पणी सरकारों पर भी उतनी ही सटीक बैठती है। उदाहरण के लिए, 15 अगस्त 2001 का *द हिन्दू* देखें, जिसमें राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड और उड़ीसा सरकारों के विज्ञापन छपे थे। ये विज्ञापन इन सरकारों द्वारा गत वर्ष उठाए गए उन कदमों की सफलता की बात करते हैं जिनसे जन-कल्याण सम्भव हुआ।

ध्यान देता हूँ।"

...कई दूसरे यह तक कहने से परहेज़ नहीं करते कि विधानसभा के सत्रों में उपस्थित रहना समय ज़ाया करना है। वाई.टी. प्रभाकर रेड्डी का कहना है कि अक्सर सदन में जो मुद्दे उठाए जाते हैं उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं होती।[44]

कानून बनाने वालों और कानून की पहचान

ऐसी परिस्थिति में जो समस्या अनसुलझी रह जाती है वह यह है कि बच्चे कानून के कौन से तत्वों को कैसे व कितना समझते हैं? वे कानून बनाने वालों की कल्पना कैसे करते हैं? कुछ अवसरों पर जब यह सवाल सीधे-सीधे रखा गया तो उन्होंने सरकार, विधानसभा या लोकसभा को कानून बनाने वाली संस्थाओं के रूप में पहचाना। इन सामूहिक शब्दों का प्रयोग कर कानून निर्माताओं की पहचान करना उचित है। परन्तु इस सन्दर्भ में प्रतिनिधियों की भूमिका की ठीक-ठीक कल्पना बच्चे नहीं कर सके। एक ग्रामीण स्कूल की कक्षा सात के बच्चों के एक समूह तथा एक-एक ग्रामीण व शहरी उच्च माध्यमिक स्कूलों के समूहों के अलावा शेष समूहों के बच्चे केवल यह बता पाए कि कानून सदनों में बनते हैं, या फिर उन्होंने 'सरकार' जैसे सामूहिक शब्दों का प्रयोग किया। *गौर करने लायक बात यह थी कि कुछ समूह सरकार को विधि सदनों और चयनित प्रतिनिधियों से अलग कर देख रहे थे।*

कक्षा सात के ग्रामीण विद्यार्थियों ने जो स्पष्टीकरण दिया वह समूह-दर-समूह भिन्न रहा। हमने गौर किया कि जब बच्चे कानून बनाने की प्रक्रिया के विषय में बोलते हैं तो वे विधानसभा के बदले अक्सर संसद की भूमिका के विषय में बताते हैं। बच्चों के कुछ समूह कानून निर्माण को एक सोपानक्रमिक प्रक्रिया के रूप में देख रहे थे। वे स्थानीय प्रशासन से शुरुआत कर ऊपरी स्तरों की ओर बढ़ेः कलेक्टर > मुख्यमंत्री > लोकसभा > राज्यसभा > और कैबिनेट के साथ राष्ट्रपति। उनके अनुसार अन्ततः राष्ट्रपति ही अन्तिम निर्णय लेता है। एक समूह ने तो कैबिनेट का जो वर्णन

किया वह कुछ-कुछ उस छवि जैसा था जैसी छवि परम्परागत पाठ्यपुस्तकें पंचायत की प्रस्तुत करती हैं जिसमें 'पाँच सदस्य' होते हैं। इन्हीं पाँच सदस्यों की सलाह से कानून बनाए जाते हैं। पदानुक्रम का जो विचार आम तौर पर लोकप्रिय है उन्होंने वैसे ही शब्दों का प्रयोग किया।

एक अन्य समूह ने कानून निर्माण की भूमिका को मुख्य न्यायाधीश और संसद के साथ जोड़ा, पर समूह यह नहीं बता पाया कि कानून ठीक किस तरीके से बनाए जाते हैं। कक्षा 7 के एक अन्य ग्रामीण समूह का तर्क था कि कानून का मतलब संविधान होता है जिसे बदला नहीं जा सकता। एक दूसरी परिचर्चा में 'राजनैतिक दल' की भूमिका पर बल दिया गया। एक लड़के ने पहले तो कहा कि किसी भी बिल पर पहले दल में चर्चा होती है, तब उसे सदन में रखा जाता है। छात्रों को यह भी लगा कि पहले 'लोगों' की राय इकट्ठा की जाती है, तब ही बिल को सदन में पेश किया जाता है। यहाँ सत्तारूढ़ दल, विपक्ष और बहुमत की निर्णायक भूमिका को वे साफ-साफ नहीं समझा पाए।

विधि निर्माण की प्रक्रिया को समझाने में पेश आई कठिनाई का एक कारण वास्तविक कानूनों से अपरिचय भी हो सकता है। यह सम्भव है कि वयस्कों के लिए भी बिल या कानून को पहचानना आसान नहीं होगा। लगभग सभी समूहों में बच्चों से कुछ कानूनों के उदाहरण देने को कहा गया। अक्सर उन्होंने काल्पनिक कानूनों का सहारा लिया, जैसे 'सड़क पर मत थूको', 'पेड़ मत काटो' आदि। कुछ समूहों ने पाठ्यपुस्तकों में दिए गए कानून बताए, जैसे 'अठारह वर्ष की उम्र पर व्यक्ति मतदान कर सकता है', या फिर उन्होंने उनमें बिना अन्तर किए मौलिक अधिकारों एवं निदेशात्मक सिद्धान्तों में से विचारों को सामने रखा, जैसे 'बाल श्रम नहीं होगा।'

कुछ समूहों ने उस बिल का ज़िक्र किया जिस पर संसद में उन दिनों चर्चा हो रही थी। वह बिल महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का था। अधिकांश बच्चे, उच्च माध्यमिक स्कूल स्तर के भी, यह समझा नहीं सके कि इसका सन्दर्भ क्या था या यह आरक्षण आखिर लागू कहाँ होगा। कुल मिलाकर बच्चों के मन में कायदे-कानूनों की बड़ी कमज़ोर-सी छवियाँ

थीं। महिला आरक्षण बिल के अलावा बच्चे किसी दूसरे वास्तविक बिल की पहचान नहीं कर सके। एक वास्तविक कानून जिसे वे पहचान सके वह लोकायुक्त से सम्बन्धित था। दसवीं के जिस छात्र समूह ने इसका उल्लेख किया वह इसका निहितार्थ भी बता सका।

कुछ समूहों ने कानूनों को लोक कल्याण गतिविधियों से जोड़ा। यह तर्क किया जा सकता है कि ऐसा इसलिए था क्योंकि बच्चों के ज़ेहन में वित्तीय बिल रहा होगा। पर इस तर्क में खास दम नहीं है। तथापि यह याद रखना ज़रूरी है कि बच्चे सरकार को मुख्यतः कल्याणकारी गतिविधियों से जोड़ते हैं और यही प्रबल धारणा इस विवरण को दिशा दे रही थी।

कानून के विषय में एक दूसरी महत्वपूर्ण छवि अपराध की समझ से उभरती है। अमूमन कानून को जुर्म के सन्दर्भ में ही समझा जाता है। यहाँ पुलिस की भूमिका या नियमों और दण्ड को लेकर बच्चों के निजी अनुभव कानून सम्बन्धी उनके विचारों को गढ़ते हैं।

कक्षा 7 के ग्रामीण समूह किसी भी वास्तविक बिल/कानून की पहचान नहीं कर पाए। वे अधिकतर अपनी कल्पनाशक्ति का उपयोग करते रहे और ऐसा लग रहा था कि 'कानूनों के उल्लंघन' सम्बन्धी उनके विचार उनको दिशा दे रहे थे। उनमें से एक ने यह भी कह डाला कि कानून का मकसद था जुर्म रोकना। जो चर्चा सबसे अच्छी रही वह इस प्रकार थी:

प्रश्नः अच्छा, वे किन चीज़ों के बारे में कानून बनाते हैं?

उत्तरः एक तो कर के बारे में है।

प्रश्नः हाँ, वह बजट है। (इस पर पहले चर्चा हो चुकी थी।)

उत्तरः —

प्रश्नः कुछ देर सोचो। क्या तुम्हें पता है?

उत्तरः —

प्रश्नः मत कौन डालता है?

उत्तरः जो 18 साल से बड़े हों।

प्रश्नः क्या इस बारे में कोई कानून होगा?

उत्तरः हाँ, जो मानसिक रूप से कमज़ोर हों और अपराधी हों और जिनका दिवाला निकल चुका हो, वे वोट नहीं डाल सकते।

प्रश्नः उन्हें वोट देने की अनुमति नहीं है...?

उत्तरः और विदेशी, जो भारतीय नहीं हैं, वे भी वोट नहीं डाल सकते।

प्रश्नः हाँ, यह एक कानून है। क्या आप ऐसे दूसरे कानूनों को याद कर बता सकते हैं?

उत्तरः —

प्रश्नः क्या वे नए कानून बना सकते हैं?

उत्तरः हाँ, वे बनाए जा सकते हैं।

प्रश्नः बनाए जा सकते हैं? किनके द्वारा?

उत्तरः पहले...जैसे...प्रधानमंत्री ने एक कानून बनाया। पहले मंत्रियों को सज़ा नहीं हो सकती थी। अब उन्होंने एक नया कानून बनाया है। कानून की नज़र में सब बराबर होने चाहिए।

प्रश्नः किस अर्थ में?

उत्तरः जैसे...लालू यादव ने एक बड़ा घोटाला किया था। पहले उन्हें सज़ा नहीं हो सकती थी।

प्रश्नः पहले कोई सज़ा नहीं थी...?

उत्तरः हाँ। अब एक कानून बनाया गया है।

प्रश्नः और क्या ऐसे दूसरे कानून भी हैं?

उत्तरः —

प्रश्नः जैसे आरक्षण की कुछ बात चल रही थी... 33 प्रतिशत

45. एक ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

ज़रूरी है...

उत्तर: महिला आरक्षण।

प्रश्न: मान लो इसी तरह का कोई कानून बनाना हो। तो क्या होगा? कैसे होगा? क्या तुम समझा सकते हो?

उत्तर: —[45]

बच्चों के पास वास्तविक कानूनों की पर्याप्त जानकारी नहीं होती, और जब उनको नाम से गिनाया जाता है, तब भी वे उन्हें समझा नहीं पाते। वे जिन रीतियों व नियमों का पालन करते हैं उनमें और कानून में अन्तर नहीं करते। कानून से जुड़ी एक मुख्य विशेषता उसके उल्लंघन के सन्दर्भ में है। इसी तरह जब वे सरकार या सदन जैसे समूह सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं होता कि वे उनमें अपने प्रतिनिधियों की भूमिका को भी समझ रहे होते हैं।

पाठ का विश्लेषण

अब हम पाठ्यपुस्तकों के विधि निर्माण सम्बन्धी अंशों को ज़रा ध्यान से देखेंगे। यह विश्लेषण स्थानाभाव के चलते केवल कक्षा 7 की पाठ्यपुस्तक तक सीमित रखा जाएगा। नीचे जो भाग उद्धृत किया जा रहा है वह अध्याय 7 यानी "हमारी संसद के क्रियाकलाप" के उपशीर्षक "कार्य" के तहत आता है:

> संसद पूरे देश के लिए कानून बनाती है। वह देश की विधि निर्माण की सबसे बड़ी संस्था है। हर साल संसद का प्रथम सत्र राष्ट्रपति के उद्बोधन से शुरू होता है। बिल दो प्रकार के होते हैं – वित्तीय बिल व वित्तीय बिलों से अलग अन्य बिल। आय व व्यय से जुड़ा कोई भी बिल वित्तीय बिल कहलाता है। वित्तीय बिल राज्यसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। उसे पहले लोकसभा में ही पेश करना होता है। लोकसभा में पारित होने के बाद वित्तीय बिल राज्यसभा में भेजा जाता है। जो बिल वित्त

सम्बन्धी नहीं होते उन्हें संसद के दोनों सदनों में से किसी एक में पेश किया जा सकता है। संसद में पेश किए गए हर बिल को तीन बार पढ़ा जाता है। पहले पठन के दौरान प्रत्येक सदस्य को उसकी प्रति दी जाती है। जो मंत्री या सदस्य बिल प्रस्तुत करता है वह बिल के उद्देश्य बताते हुए एक सामान्य भाषण देता है। दूसरे पठन के दौरान बिल पर धारा-दर-धारा चर्चा की जाती है। जो सदस्य बिल का समर्थन करते हैं वे बिल के महत्व व आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं। जो सदस्य बिल के विरुद्ध होते हैं वे उसकी आलोचना करते हैं। इस चरण में सदस्य बिल में बदलाव के सुझाव भी दे सकते हैं। ऐसे कुछ सुझाव सदन स्वीकार कर सकता है। बिल के तीसरे पठन के समय समूचे बिल पर अन्तिम चर्चा होती है और उस पर वोट डाली जाती है। यदि सदस्यों का बहुमत उसके पक्ष में हो तो बिल पारित हो जाता है। यह प्रक्रिया दोनों ही सदनों में अपनाई जाती है। जब लोकसभा और राज्यसभा दोनों बिल को पारित कर देते हैं तो बिल राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए उनके पास भेजा जाता है। आम तौर पर संसद में बिल सामान्य बहुमत से पारित होते हैं। अर्थात् अगर सदन में 100 सदस्य उपस्थित हों और उनमें से 51 सदस्य बिल के पक्ष में हों व 49 विपक्ष में, तो बिल सामान्य बहुमत से पारित माना जाता है। आपने पहले पढ़ा है कि संविधान में बदलाव या संशोधन किया जा सकता है। इन संशोधनों के लिए विशेष बहुमत की ज़रूरत होती है। उदाहरण के लिए, कुछ संशोधनों के लिए संसद में दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है।

....इस तरह हम देख सकते हैं कि संसद अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करती है। सर्वप्रथम, वह विभिन्न विषयों पर कानून बनाती है।[46]

वर्णन का आगामी भाग संसद के अन्य कार्यों का सार-संक्षेप रखता है। यह लम्बा अनुच्छेद कानून की समूची निर्माण प्रक्रिया का संक्षिप्त वर्णन है। यह

46. मुले व अन्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ 29-30.

'बिल', 'कानून' एवं 'संशोधन' में अन्तर स्पष्ट करने की कोशिश नहीं करता है। इसमें केवल 'वित्तीय बिलों' और 'अन्य बिलों' का अन्तर बताया गया है। गौर करने लायक बात यह है कि यह पाठ्यपुस्तक सातवीं कक्षा के बच्चों के लिए है और वे पहली बार इन पारिभाषिक शब्दों से परिचित हो रहे हैं। अतः इतनी अपेक्षा तो रखी ही जा सकती है कि कानून व संशोधन के कम से कम कुछ उदाहरणों को पाठ में शामिल किया जाता।

साथ ही पाठ्यपुस्तक में तीन चरणों की प्रक्रिया का जिस प्रकार उल्लेख किया गया है उससे लगता है कि वह बिलकुल 'साफ-सुथरी' प्रक्रिया है। परन्तु असल में इस प्रक्रिया के कई पक्षों का इस वर्णन से खुलासा नहीं होता। इनमें से एक है "धारा-दर-धारा चर्चा"। इन शब्दों का अर्थ केवल तब ही समझा जा सकता है जब यह समझ आ जाए कि ऐसी चर्चा क्यों महत्वपूर्ण है और अगर कुछ धाराएँ बदल दी जाएँ तो क्या फर्क पड़ सकता है।

इसी प्रकार, पाठ्यपुस्तक "तीन पठनों" का उल्लेख करती है जो बच्चों को समझ नहीं आ सकता। इसमें किसी बिल या कानून के विरोध करने के सम्भावित कारण नहीं बताए गए हैं और न ही यह साफ किया गया है कि उसके बारे में लोगों की भिन्न-भिन्न राय क्यों हो सकती है या चर्चा में लोगों में आपसी मतभेद क्यों हो सकता है। पाठ्यपुस्तक संसद में चर्चा को और ऐसी परिस्थितियों में राजनैतिक दलों के हितों या विचारधारा की निर्धारक भूमिका को पूरी तरह नज़रअन्दाज़ करती है।

यहाँ गौर करना चाहिए कि पाठ्यपुस्तक का उद्धृत अंश सामान्य बहुमत के विचार को समझाने की चेष्टा ज़रूर करता है, पर ऐसा करते हुए उसे राजनैतिक दलों के विचार से नहीं जोड़ता। अध्याय के अन्त में दी गई गतिविधियों या प्रश्नों में भी सामान्य बहुमत के विचार का उपयोग नहीं होता। 'विशेष बहुमत' का भी खुलासा नहीं किया जाता। उपरोक्त अंश सटीक तो लगता है पर यह स्पष्ट नहीं करता कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में बहुमत की अवधारणा महत्वपूर्ण क्यों है। यह एक गम्भीर कमी लगती है क्योंकि लोकतांत्रिक राज्य में बहुमत का शासन एक अत्यावश्यक तत्व है।

उद्धृत हिस्सा संविधान संशोधन की "पहले ही पढ़ी जा चुकी" प्रक्रिया का उल्लेख करता है। परन्तु इसका एकमात्र वर्णन जो पाठ्यपुस्तक में है, वह है:

> ...परन्तु यह अपरिवर्तनीय नहीं है। वास्तव में स्वयं संविधान में ही उस प्रक्रिया का उल्लेख है जिसके द्वारा परिवर्तन किए जा सकते हैं। ऐसे परिवर्तनों को संशोधन कहते हैं। ये संशोधन उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए किए जाते हैं जो समय-समय पर उठती हैं। उदाहरण के लिए, मिज़ोरम, अरूणाचल प्रदेश व गोवा जैसे नए राज्य बनाए गए। दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र बनाया गया। इस सबके लिए संविधान में प्रासंगिक परिवर्तन करने पड़े।[47]

यहाँ उम्मीद यह रखी गई है कि बच्चे समझ जाएँगे कि संशोधनों का अर्थ क्या है और उनकी ज़रूरत क्यों पड़ती है। परन्तु इस विचार को समझ पाना मुश्किल होगा कि नए राज्यों का गठन एक ऐसा कदम है जो "समय-समय पर उठने वाली" कठिनाइयों को दूर करेगा। उम्मीद यह भी रखी गई है कि बच्चे इस विचार को विधि निर्माण प्रक्रिया से जोड़ लेंगे। यदि हम इस बात पर गौर करें कि संविधान संशोधनों का यही एकमात्र वर्णन है, तो यह उम्मीद पूरी तरह अवास्तविक है। एक बात और अस्पष्ट रह जाती है कि संशोधनों का लोकतंत्र से क्या रिश्ता है या संविधान में बदलाव लाने के लिए "विशेष बहुमत" की ज़रूरत क्यों पड़ती है।

इसी पाठ के एक दूसरे बिन्दु पर लोकतंत्र, चुनाव, कानून और नागरिकों की भूमिका के बीच रिश्ता दर्शाने की कोशिश की गई है:

---

47. उपरोक्त, पृष्ठ 10-11. यह पैराग्राफ पाठ्यपुस्तक के तीसरे अध्याय यानी "संविधान की प्रमुख विशेषताएँ" नामक अध्याय में आता है। पाठ्यपुस्तक में यह अध्याय तब आता है जब विधि-निर्माण का विचार समझाया ही नहीं गया है।

48. उपरोक्त, पृष्ठ 10 (तिरछे छपे अक्षरों पर ज़ोर मैंने दिया है – लेखक)। यह तथा इससे पहले उद्धृत अंश संविधान पर दिए गए एक ही अध्याय से हैं। अतः पाठ्यपुस्तक यह दर्शाने पर ज़ोर देती है कि कैसे एक दस्तावेज़ अर्थात् संविधान ने हमें हमारी शासन व्यवस्था दी।

> ऐसे चुनावों में प्रतिनिधि लोगों द्वारा चुने जाते हैं। चयनित प्रतिनिधि लोगों के हित में कानून बनाते हैं। लोग इन्हीं कानूनों द्वारा शासित होते हैं। और वे इन कानूनों की पालना करते हैं। *यही लोकतंत्र है*। लोकतंत्र में जन-प्रतिनिधियों द्वारा सरकार बनाई जाती है। अगर लोग सरकार के काम से सन्तुष्ट न हों तो वे उसे अगले चुनाव में सत्ता में नहीं आने देते। हमारा संविधान भारत में ऐसी ही सरकार *स्थापित* करता है।[48]

उपरोक्त पैराग्राफ में लोकतंत्र की जो परिभाषा दी गई है सैद्धान्तिक स्तर पर उससे पूरी तरह असहमत हुआ जा सकता है। पर इस विश्लेषण में इस बात को हम नज़रअन्दाज़ करेंगे। लेकिन यह याद रखना ज़रूरी है कि उद्धृत अंश में लोकतंत्र *बनाने या उसे टिकाए* रखने में संविधान की भूमिका समझाने पर बल दिया गया है। लोकतंत्र को चुनाव व कानून निर्माण के सहारे परिभाषित किया गया है। लोगों की इस प्रक्रिया में जो भूमिका बताई गई है वह है उन प्रतिनिधियों को 'चुनना' *जो कानून के निर्माता हैं*। अतः यहाँ सरकार का क्रियाकलाप कानून निर्माण के विचार से परे नहीं जाता। तब भी संसद से सम्बन्धित अध्यायों में विधि या कानून का विचार विस्तार से समझाया नहीं गया है। इसके बदले पाठ्यपुस्तक जिस विषय पर अमूमन चर्चा करती है वह है संघ की, राज्यों की व समवर्ती सूचियाँ।

ज़ाहिर है कि पाठ्यपुस्तक में जन-प्रतिनिधियों की भूमिका और कानून की महत्ता के स्पष्टीकरण का अभाव है। प्रायः प्रत्येक अध्याय में संविधान को उद्धृत किया गया है और ढाँचे 'उपलब्ध करवाने' की उसकी भूमिका पर भारी बल दिया गया है। परन्तु नागरिकों तथा समाज और राज्य के अन्य *तत्वों* की भूमिका की उपेक्षा की गई है।[49]

---

49. उच्च माध्यमिक स्कूलों की पाठ्यपुस्तक का वर्णन अधिक पेचीदा है। परन्तु यहाँ भी संविधान और उससे सम्बन्धित उद्धृत अंशों में साम्य पर गौर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, वित्तीय बिलों का वर्णन करते समय कविराज लगभग उसी भाषा का उपयोग करते हैं जो संविधान के अनुच्छेद 109 व 110 की भाषा है।

राज्यों की विधानसभाओं के बारे में पाठ्यपुस्तक निम्नोक्त तर्क प्रस्तुत करती है:

> पिछले अध्यायों में आपने पढ़ा कि बिल कैसे पारित किए जाते हैं। राज्यों की विधानसभाओं द्वारा पारित सभी बिलों पर राज्यपाल की सहमति की दरकार होती है। राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह किसी भी बिल को राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक ले। कई बार स्वयं राज्यपाल भी कुछ आदेश जारी कर सकते हैं। इन आदेशों को अध्यादेश कहा जाता है।[50]

उपरोक्त वर्णन यह मानकर चलता है कि बच्चे संसद में *तीन पठनों* वाले चरण को समझ गए हैं और उनसे *अपेक्षा रखता है* कि वे इस ज्ञान को विधानसभा के सन्दर्भ में *खुद ही लागू कर लेंगे*। इसके बाद पाठ्यपुस्तक जल्दी से राज्यपाल तथा अध्यादेशों की भूमिका की ओर बढ़ जाती है। यह भूमिका क्यों महत्वपूर्ण है या कानून व अध्यादेशों में क्या सम्बन्ध है, इस बात का कोई खुलासा नहीं किया जाता।

कुल मिलाकर यह समझना ज़रूरी है कि पाठ्यपुस्तक के विभिन्न हिस्से किसी विचार विशेष को स्पष्ट करने के मकसद से व्यवस्थित ही नहीं किए गए हैं। जब पाठों को बड़े ध्यान से पढ़ा जाए और विभिन्न विचारों के आपसी सम्बन्धों को ध्यान से ढूँढने की चेष्टा की जाए, जैसे हमने यहाँ किया है, केवल तब ही यह समझ आ सकता है कि लेखक दरअसल क्या कहना चाह रहे हैं।

कानून निर्माण की प्रक्रिया

जब हमने यह तलाशने की चेष्टा की कि बच्चे विधि निर्माण प्रक्रिया के बारे में क्या समझे हैं, तो मोटे तौर पर निम्नोक्त विचारों पर ध्यान दिया गया:

- विधि निर्माण की सामूहिक प्रक्रिया।

---

50. मुले व अन्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ 39.

- बहस की प्रक्रिया।
- बिल पारित करने का तरीका, खासकर बहुमत की भूमिका।
- राजनैतिक दलों की भूमिका।

बच्चों के अधिकांश समूह बहुमत के विचार पर किसी स्पष्ट समझ के साथ बातचीत नहीं कर सके। कुछ समूह ही ऐसे थे जो वाद-विवाद की प्रक्रिया को समझा सके। हमारे संकेत देने वाले सवालों के कारण ही वे यह कल्पना कर सके कि एक सदन है जहाँ बिलों को पारित करने से पहले उन पर बहस होती है। जब काल्पनिक परिस्थिति उनके समक्ष नहीं रखी जाती तो बच्चे कहते, "बिल सदन में ही पास करना होता है," पर वे सदन के सदस्यों का कोई उल्लेख नहीं करते। कानूनों में संशोधन के विषय में उनका मानना यह था कि कोई दूसरी ही संस्थाएँ या सत्ता ये बदलाव करती हैं।[51] इससे पता चलता है कि बच्चे इस विचार को पूरी तरह नहीं समझ पाए हैं कि विधि निर्माण संसद तथा विधानसभाओं का कार्य है।

इस सन्दर्भ में कुछ दृष्टान्तों को देखा जाना उपयोगी होगा। निम्नोक्त चर्चा शुरू करने से पहले बच्चों ने पाठ्यपुस्तक में विधि निर्माण प्रक्रिया की जो जानकारी दी गई थी उसे याद करने की कोशिश की:

प्रश्नः अच्छा तो अब बताओ कि कानून कैसे बनाए जाते हैं।

उत्तर 1: कानून, वह...

उत्तर 2: (पाठ याद करने की कोशिश में अपने साथी से) बिल पारित किया जाता है, वह हिस्सा। बिल कैसे पारित करते हैं?

---

51. विधि निर्माण पर चर्चा करते समय इस वक्तव्य का उपयोग किया गया: "बाल विवाह निरोधक कानून के अनुसार लड़के की आयु कम से कम 21 वर्ष और लड़की की कम से कम 18 वर्ष की होनी चाहिए। अगर लड़के का विवाह 21 वर्ष से पहले या लड़की का 18 वर्ष से पहले होता है तो यह अपराध है।"

52. एक शहरी स्कूल की सातवीं कक्षा के बच्चों से चर्चा।

उत्तर 1: सर, पहले एक संवैधानिक चुनाव होता है। तब सारे विधायक, जैसे हमारे यहाँ के तुकोजीराव पवार, सबको एक-एक वोट मिलता है। तब वे बिल की अपनी-अपनी प्रतियाँ पढ़ते हैं। किसे पता वे क्या करते हैं? हमें इस बारे में किसी ने कुछ नहीं बताया। तीसरे दौर में सब इकट्ठा होते हैं, प्रस्ताव सामने रखा जाता है, और वे नियमानुसार कानून बनाते हैं।[52]

वे बिलकुल साफ-साफ कहते हैं, "इन सत्रों में क्या होता है हम नहीं जानते।" यह इस बात का संकेत है कि पाठ्यपुस्तकें तटस्थ व अवैयक्तिक भाव से इस विषय को निपटाती हैं। दरअसल जो पाठ्यपुस्तकें प्रस्तुत करती हैं वह वास्तविक प्रक्रिया की विषयवार रूपरेखा भर होती है।

एक शहरी समूह से हुई जिस चर्चा को नीचे उद्धृत किया जा रहा है उससे पता चलता है कि बच्चे यह क्यों मानते हैं कि किसी कल्याणकारी परियोजना को लागू करने के लिए एक बिल लाना ज़रूरी होता है। पाठ्यपुस्तकों की ही तरह उन्होंने प्रक्रिया का एक अवैयक्तिक-सा वर्णन दिया, यद्यपि उन्होंने 'विपक्ष' जैसी धारणाओं को भी इसमें जोड़ा। 'विपक्ष' की बात करते समय दिशादर्शक सिद्धान्त विचारधाराओं के साथ जुड़कर नहीं उभरा, बल्कि वह जानकारी के अभाव के रूप में उभरा। बहुमत जैसे विचारों का खुलासा करने को कहने पर वे अटकने लगे:

प्रश्न: बिल क्या होता है?

उत्तर 1: बिल का अर्थ है, एक तरह से, कि हम अनुरोध करना चाहते हैं। जैसे इस सड़क को सुधारना हो, जिसमें बड़े-बड़े गड्ढे हैं। और बीच में एक बाँध भी बनवाना हो। (*इस बच्चे ने पुल के लिए बाँध शब्द का प्रयोग किया।*) मतलब, आसानी के लिए। और इसे दो लेन वाली सड़क बनाने में फायदा है।

प्रश्न: क्या इसके लिए एक बिल प्रस्तुत करना होगा?

उत्तर 2: हाँ।

उत्तर 3: जैसे, अलग-अलग दल हैं। वे प्रधानमंत्री और दलों और मंत्रियों से चर्चा करना चाहते हैं...। इस बारे में क्या किया जा सकता है, क्या करना है, क्या करेंगे।

उत्तर 2: (सुझाते हुए) कैबिनेट।

उत्तर 1: उसमें क्या होता है? यह सब जो संसद में...। वे इसे सदन में रखते हैं।

उत्तर 2: ऐसा बिल बनाओ।

उत्तर 3: तब वे इसे संसद के अध्यक्ष को देते हैं। इन सभी मसलों पर विपक्षी दलों से बातचीत करते हैं और वे भी अपनी राय देते हैं और सबको मनवाने की कोशिश करते हैं।

उत्तर 2: इसमें सकारात्मक बिन्दु, वे बहुमत के अनुसार होते हैं। तब वे उसे पास कर देते हैं। यह कर दिया जाएगा।

उत्तर 3: उसके बाद वह राष्ट्रपति को जाता है। जब उस पर हस्ताक्षर हो जाते हैं, तो वह कानून बन जाता है।

उत्तर 2: तब उस कानून को कार्यकारिणी लागू करती है।

प्रश्न: तो एक सड़क बनवाने के लिए एक बिल होगा?

उत्तर 1: एक बिल होना होगा।

उत्तर 2: एक कानून होगा।

उत्तर 3: अगर आप अनुरोध करें। अगर आप अनुरोध करें और आपको इसकी सख्त ज़रूरत है, तो एक बिल होगा। नहीं तो...। यानी अगर ऐसा न हो तो...।[53]

एक तत्व जो कई समूहों को उलझाता लगता था वह वे सदन हैं जिनमें कानून पारित होता है। जब बच्चों से उस प्रक्रिया का वर्णन करने को कहा

---

53. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों के साथ चर्चा।

गया तो वे यह कल्पना करते रहे कि समूची प्रक्रिया संसद में चलती है; विधानसभा का ज़िक्र बिरले ही हुआ। यह निम्नोक्त उदाहरण से देखा जा सकता है जहाँ एक बच्चे ने वह प्रक्रिया समझाने की कोशिश की जिसमें आरक्षण बिल पारित किया जा सकता है। यह साफ है कि बच्चा विधानसभा और राज्यसभा में अन्तर नहीं कर पा रहा था:

प्रश्न: इसका मतलब हुआ...। अच्छा। क्या राज्य विधानसभा में भी कानून बनाए जाते हैं?

उत्तर: अगर राज्य विधानसभा इस बात पर सहमत हो कि कोई कानून बनना चाहिए तो वह लोकसभा के पास जाएगा, और अगर लोकसभा उसे पारित कर दे और लोकसभा के लोग चाहते हों कि ऐसा कानून होना चाहिए, तो वह राष्ट्रपति को जाएगा।

प्रश्न: तो पहले विधानसभा के लोग कहेंगे कि हमें इस कानून की ज़रूरत है और एक बिल बनाया जाएगा...?

उत्तर: राष्ट्रपति और मुख्यमंत्री। राष्ट्रपति की सहमति से ही कोई बिल...। या वह तब तक बिल नहीं बनता जब तक वह विधानसभा से लोकसभा में और लोकसभा से राष्ट्रपति के पास न आए।

प्रश्न: ज़रा धीरे चलते हैं...सिर्फ समझाओ। मान लो कि यह महिला आरक्षण का बिल है, तो क्या होगा?

उत्तर: सबसे पहले तो मुख्यमंत्री के साथ, मुख्यमंत्री के मार्फत विधानसभा में कुछ किया जा सकता है।

प्रश्न: ठीक है। विधानसभा में कुछ हुआ होगा। तब...?

उत्तर —

प्रश्न: तब क्या होगा?

उत्तर: यह विधानसभा में है। अगर विधानसभा के लोग सहमत होते हैं कि महिलाओं के लिए आरक्षण होना चाहिए, तो

मतदान होगा। तब वह लोकसभा में जाएगा। अगर लोकसभा भी मान लेती है, तो वह राष्ट्रपति के पास जाएगा। राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करने होंगे। अगर वे असहमत हैं तो वे उसे वापस भेज देंगे। विधानसभा को। अगर उन्हें लगे कि इसमें कुछ गलतियाँ हैं तो वे उसे विधानसभा को भेजेंगे। तब विधानसभा के लोगों को लगेगा कि उसमें कुछ समस्याएँ हैं। इसलिए ही राष्ट्रपति ने इसे वापस लौटा दिया है। अगर इसमें उनकी तरफ से गलतियाँ होंगी तो वे उन्हें सुधारेंगे। नहीं तो वे उसे लोकसभा को लौटा देंगे और अगर लोकसभा उसे पारित कर देगी तो वह राष्ट्रपति के पास जाएगा। अब राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करना अनिवार्य होगा।

प्रश्नः हरेक राज्य में एक विधानसभा होती है, कर्नाटक में, महाराष्ट्र में। तो क्या यह बिल इन सभी विधानसभाओं में जाएगा? महिलाओं के आरक्षण का यह बिल, क्या यह इन सभी राज्यों से होता हुआ लोकसभा जाएगा?

उत्तरः नहीं। यह पहले से तय कर लिया जाएगा कि वह किस विधानसभा के पास जाएगा। और इस विधानसभा और लोकसभा में क्या करना है।[54]

शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के एक अन्य समूह ने विधि निर्माताओं की पहचान करते समय एक पदक्रम की व्यवस्था बताई।[55] यह समूह उसी स्कूल से था जिसके कुछ समूहों ने पाठ्यपुस्तक में वर्णित प्रक्रिया को सही-सही बताया था। परन्तु जब हमने कानून के बारे में पहले से तैयार सवाल सामने रखा तो कानून बनाने के बारे में उनकी धारणा बदल गई।

अब कानून बनाने की भूमिका उन्होंने मंत्री, विधानसभा के अध्यक्ष,

54. एक शहरी माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

55. एक शहरी उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

राष्ट्रपति, कलेक्टर और मुख्यमंत्री आदि को दे डाली। बच्चों ने अपनी कल्पनाशक्ति का उपयोग किया और पारिभाषिक शब्दों की इस भीड़ में एक व्यवस्था बैठाने की कोशिश की। कानून बनाने के जिस तरीके को वे पहले समझा रहे थे उससे यह भिन्न था। उनकी नज़र में पहले लोग अपने सुझाव कलेक्टर को देते हैं, जो मुख्यमंत्री को इसकी सिफारिश करता है। तब इसे एक विधायक को दिया जाता है जो प्रश्नोत्तर सत्र में इसे सदन में रखता है। इसके बाद विधानसभा अध्यक्ष उसे राष्ट्रपति को भेजता है। अगर प्रस्ताव "पारित हो" अनुमोदन पा लेता है, तो वह कानून बन जाता है।

एक अन्य छात्र ने जोड़ा कि कानून से सम्बन्धित मंत्रालय/मंत्री कानून को प्रस्तावित करने में एक सक्रिय भूमिका निभाएगा। उनमें से एक ने सुझाव प्रेषित करने की भूमिका विधायक को दी, तो एक दूसरे ने मंत्री को। उदाहरण के लिए, जब उनसे पूछा गया कि वे सोचें कि अगर यह कानून बनाना हो कि दसवीं की बोर्ड परीक्षाएँ निरस्त कर दी जाएँ तो यह कैसे किया जाएगा, तो उनका कहना था कि ये सुझाव शिक्षा मंत्री को प्रेषित किए जाएँगे।

एक दूसरा समूह कानून बनाने की प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण को याद से बता नहीं पाया, पर उसे राष्ट्रपति की भूमिका याद थी। साथ ही यह समूह कानून लागू करने और उसे बनाने की दो अलग-अलग बातों को आपस में जोड़ता रहा। समूह ने कहा कि कानून राष्ट्रपति के परामर्श से बनाया जाता है और तब लागू किया जाता है। उसकी नज़र में राष्ट्रपति की सलाह से प्रधानमंत्री द्वारा भी कानून बनाया जा सकता है।

बातचीत शुरू हुई और मैंने बच्चों से दीवार पर टँगे जवाहरलाल नेहरू के चित्र को पहचानने को कहा तो वे ऐसा कर पाए और उन्होंने उनके बारे में बात भी की। कानून बनाने के बारे में उनकी धारणा जानने के लिए पूछा गया कि प्रथम प्रधानमंत्री और प्रथम राष्ट्रपति कानून बनाने के विषय में किस प्रकार एक-दूसरे की सलाह लेते होंगे। वे इस पर विस्तार से बात नहीं

कर पाए, यद्यपि वे दिए गए उदाहरण से सहमत थे। उन्होंने सूची में आगे "और सभी जगहों के नेता", और इसके बाद "राज्यपाल" व "मुख्यमंत्री" को भी जोड़ा।

पाठ्यपुस्तक में मंत्रिमण्डल की नियुक्ति के विषय में जो जानकारी दी गई है – जिसमें कहा गया है कि प्रधानमंत्री की सलाह से राष्ट्रपति मंत्रियों को नियुक्त करते हैं – सम्भव है कि बच्चे उससे प्रभावित हुए हों और इस ज्ञान को वे कानून बनाने के सन्दर्भ में भी लागू कर रहे हों। पाठ्यपुस्तकों में अमूमन लिखा होता है कि "प्रधानमंत्री की सलाह से राष्ट्रपति अन्य मंत्रियों को नियुक्त करते हैं":

प्रश्नः क्या वे केवल राष्ट्रपति से सलाह करते हैं...?

उत्तरः और राज्यपाल से।

प्रश्नः और वे किसी को कुछ नहीं बताते? सीधे लागू कर देते हैं, क्या ऐसा होता है?

उत्तर —

प्रश्नः (दीवार की ओर संकेत करते हुए) ये पहले प्रधानमंत्री थे। क्या वे ऐसा करते थे?

उत्तरः हाँ।

प्रश्नः उन्होंने कुछ...। पहले राष्ट्रपति कौन थे?

उत्तर 1: राधाकृष्णन।

उत्तर 2: राधाकृष्णन नहीं।

प्रश्नः तब?

उत्तर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद।

प्रश्नः तो उन्होंने सीधे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से सलाह की और तब कानून लागू हो गया?

उत्तरः पहले उन्होंने सभी जगह के सब नेताओं को बुलाया होगा।

प्रश्नः सभी जगह के नेताओं से तुम्हारा क्या मतलब है?

उत्तरः सभी मुख्यमंत्रियों को और दूसरे नेताओं को, सबको।

प्रश्नः ठीक। और तब...?

उत्तरः राज्यपाल से सलाह करते हैं, मुख्यमंत्री से, नेताओं से और कानून बना दिया जाता है।

प्रश्नः (पाठ्यपुस्तक का हवाला देते हुए) क्या सोचते हो?

उत्तरः राज्यपाल को राष्ट्रपति बनाता है। विधानसभा की चीज़ हो तो राज्यपाल हस्ताक्षर करता है।

प्रश्नः वह नहीं। तीन बार पढ़ा जाता है। बिल के तीन पाठ...। विधानसभा में उसे तीन बार पढ़ा जाता है...क्या लोकसभा में भी ऐसा कुछ होता है?...लोकसभा और राज्यसभा कहाँ हैं?

उत्तरः दिल्ली और भोपाल में।

प्रश्नः तो क्या उनमें बिल पढ़ते हैं?

उत्तरः —

प्रश्नः क्या आपकी पाठ्यपुस्तक यह कहती है कि बिल पारित होने के बाद कानून बन जाता है?

उत्तरः नहीं।[56]

उपरोक्त उद्धरण से साफ नज़र आता है कि जब बच्चों से कानून बनाने के तरीके की बारीकी में जाने को कहा जाता है तो वे प्रक्रिया के अत्यावश्यक हिस्से याद नहीं कर पाते और सामान्य सूझबूझ से पारिभाषिक शब्दों को व्यवस्थित करने की कोशिश करते हैं। जवाब देने का दबाव जब उन पर डाला गया तो ठीक यही इन बच्चों ने भी किया। ऐसा तब भी हुआ जब हमने एक शहरी स्कूल की कक्षा सात के बच्चों से अपने ज्ञान को लागू करने को कहा। यहाँ शक्ति और सत्ता की भूमिका प्रमुख हो जाती है और

56. एक ग्रामीण माध्यमिक शाला के बच्चों से चर्चा।

जनता की लोकतांत्रिक भागीदारी के नज़रिए को धुँधला कर देती है।

कानून निर्माण की प्रक्रिया समझाते वक्त बच्चे एक बिन्दु पर रुकते हैं: "राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर करते हैं तब वह लागू होता है।" पाठ्यपुस्तक भी ठीक यहीं ठहरती है। इस विषय पर चर्चा करते समय दूसरी जो छवियाँ बच्चों को याद आती हैं वे इस प्रकार के वक्तव्यों में दिखाई देती हैं: "आवश्यक जानकारी जनता में प्रसारित की जानी चाहिए", या "यह जनता की ज़िम्मेदारी है कि वह कानूनों का पालन करे।"

सामान्यत: बच्चे किसी कानून विशेष के बारे में जानकारी देने में असमर्थ रहते हैं। वास्तविक कानूनों के बारे में उनकी जानकारी बेहद सीमित होती है। यह तथ्य चुनावों जैसी घटना की उनकी जानकारी से भिन्न है, जिस बारे में वे सदा हमें काफी कुछ बता सके थे।

आम तौर पर चुनाव पाँच साल बाद आयोजित होते हैं। अत: कोई बच्चा जो माध्यमिक स्कूल से उच्च माध्यमिक स्कूल पहुँचता है (जिसमें पाँच साल लगते हैं), वह अधिकतम दो चुनाव देखता है। दूसरी ओर विधानसभाओं की कार्रवाई साल भर चलती रहती है (हर साल कम से कम तीन सत्र होते हैं) और उम्मीद यह रखी जाती है कि जन-प्रतिनिधि अपना अधिकांश समय 'कानून बनाने' में लगाएँगे। इसके बावजूद जब भी बच्चे किसी कानून को पहचान पाते हैं और यह बता पाते हैं कि वह कैसे बना था, तो वे सारे उदाहरण संसद के ही लेते हैं। राज्य विधानसभाओं के उदाहरण पूरी तरह नदारद होते हैं। सत्रों के नियमित रूप से आयोजित होते रहने के बावजूद बच्चों के मन में सरकार की जो छवि है उसमें उन्हें कोई जगह नहीं मिलती।

हम यह उल्लेख भी कर दें कि जब बच्चे टीवी पर घटनाओं को देखते हैं तो यह ज़रूरी नहीं कि वे दृश्य छवियों और उस वर्णन के बीच सार्थक सम्बन्ध बना सकें जो उनके साथ-साथ सुनाई देता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि टीवी वयस्कों का माध्यम है।[57]

57. सी. कलिंगवुड अपने अध्ययन *चिल्ड्रन एंड सोसायटी: चिल्ड्रन्स एटिट्यूड टू पॉलिटिक्स एंड पावर* (कैसल, लन्दन, 1992, पृष्ठ 147) में इस विचार को प्रभावी रूप से उभारते हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि कानून जैसी अवधारणा सिखाते-बताते समय कानून निर्माण प्रक्रिया की चर्चा करने से पहले कानून सम्बन्धी कुछ ठोस छवियाँ गढ़ना ज़रूरी है। इसी प्रकार कानून की आवश्यकता और उसकी निर्माण प्रक्रिया में लोकतांत्रिक शासन के महत्व पर चर्चा की जानी चाहिए। परन्तु हम इस विषय पर कुछ अनिश्चय की स्थिति में हैं कि माध्यमिक शाला स्तर पर यह चर्चा कितनी विस्तृत हो। इस मुद्दे पर हम एक आगामी भाग में बात करेंगे।

कानून या कल्याणकारी गतिविधियाँ लागू किए जाने के बारे में बच्चों की क्या कल्पना है इस पर हमारी काफी लम्बी चर्चाएँ हुईं। उन्हें हम विस्तार से प्रस्तुत नहीं करेंगे। पर हम इतना अवश्य बताना चाहेंगे कि बच्चों ने कल्याणकारी गतिविधियों को लागू करने की प्रक्रिया का वर्णन व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर किया। और उनके विवरणों में उनकी काफी स्पष्ट व सुदृढ़ राय थी कि कुछ ताकतवर लोग ही इन गतिविधियों को दिशा देते हैं। क्रियान्वयन के बारे में उनका मानना था कि वह "विचार का प्रसार करके" या "सबको आदेश देकर" किया जाता है।

कानून बनाने की प्रक्रिया समझने में बच्चों को कठिनाई क्यों होती है इसके कुछ सम्भावित कारण हैं:

- राज्य के कानूनों और अपने निजी समाज के रीति-रिवाज़ों, स्कूल के नियमों आदि में वे अन्तर नहीं कर पाते।
- बच्चे राजकीय कानूनों को अपराध व दण्ड के विचार से जोड़कर देखते हैं। इसमें कानून के उल्लंघन का विचार भी शामिल रहता है। ये विचार वे अपने आसपास के समाज से उठाते हैं।

जब बच्चे यह तर्क करते हैं कि यह एक कानून है कि "सड़क पर थूकना मना है", और कि "केवल अठारह साल से अधिक उम्र का व्यक्ति ही वोट दे सकता है", तो उन्हें इन दोनों में कोई अन्तर नज़र नहीं आता। वे अपने

स्कूलों में देखते हैं कि जब वे 'नियम' तोड़ते हैं तो उन्हें सज़ा मिलती है। इसी प्रकार कुछ बच्चे कानून की परिकल्पना उसके उल्लंघन के सन्दर्भ में ही कर पाते हैं, जिसके साथ पुलिस और न्यायपालिका की छवियाँ जोड़ी जाती हैं। किसी बच्चे द्वारा कानून की ऐसी धुँधली समझ को रूपान्तरित कर उसे किसी संस्था द्वारा बनाए गए कानूनों के रूप में देखना, जिसका नाम वह सम्भवतः पहली बार पाठ्यपुस्तकों में पढ़ रहा हो, आसान नहीं है।

मूलभूत ढाँचा

राजनैतिक संस्थाओं के बारे में जानने के लिए जो अवधारणा बेहद महत्वपूर्ण है वह है सरकार के विभिन्न अंगों की अवधारणा। चर्चा के लिए चुनी गई अवधारणाओं में यह सम्भवतः सबसे कठिन अवधारणा थी। परन्तु इस अवधारणा का मूल्यांकन ज़रूरी था क्योंकि पाठ्यपुस्तकें अमूमन सरकार के तीन अंगों के ढाँचे के तहत ही राजनैतिक संस्थाओं को वर्गीकृत करती हैं। ये तीन अंग हैं – विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका। पाठ्यपुस्तकें इनमें से प्रत्येक अंग से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं तथा उनसे जुड़े पदाधिकारियों का उल्लेख ऐसे करती हैं मानो वे अलग-अलग इकाइयाँ हों। इन तीनों में भूमिकाओं का दोहराव या उनका आपसी जुड़ाव कमज़ोर रह जाता है, स्पष्ट नहीं हो पाता।

हमारी समूह चर्चाओं ने स्पष्ट कर दिया कि बच्चे पाठ्यपुस्तक में दी गई परिभाषा से आगे नहीं बढ़ सकते थे।[58] हमने यह गतिविधि मुख्यतः हाई स्कूलों के समूहों के साथ की। अतः उनका खराब प्रदर्शन यह दिखाता है

---

58. इस अवधारणा की बच्चों में क्या समझ है यह जाँचने के लिए हमने जो प्रश्न पहले से तैयार किया था उसकी सूची में कलेक्टर, शिक्षक, सत्र न्यायाधीश/मुख्य न्यायाधीश, वकील, पुलिस, सांसद, डाकिया, तहसीलदार, प्रधानमंत्री, पटवारी, राष्ट्रपति, राज्यपाल, मेयर, सरपंच, मुख्यमंत्री, खण्ड विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.), विधायक आदि थे। बच्चों से अपेक्षा की गई थी कि वे यह बताएँ कि इनमें से हरेक पदाधिकारी सरकार के किस अंग से जुड़ा है, और किस कारण।

कि ये विचार कितने पेचीदा हैं। बच्चों को किताबों के कण्ठस्थ किए गए विवरणों को इन पदनामों के ठोस उदाहरणों में बदलना कठिन लगता है।

कई बार समाधान तलाशने के लिए बच्चे इन पदनामों को हिस्सों में तोड़ देते हैं। ऐसा करने पर यदा-कदा वे सही अर्थ भी पा लेते हैं, पर कई बार उन्हें इससे झूठे संकेत भी मिलते हैं। ऐसा होने पर वे इन अधिकारियों को गलत संस्थाओं से जोड़ बैठते हैं। उदाहरण के लिए, एक चर्चा में न्यायालयों को न्यायपालिका की श्रेणी से जोड़ने की कोशिश की गई। इसी प्रकार बच्चों ने नगरपालिका को कार्यपालिका से जोड़ा क्योंकि उसे नगर कार्यालय कहा जाता है। विधायिका अंग के काम का अर्थ उन्होंने 'व्यवस्था करना' अर्थात् कल्याणकारी गतिविधियों की व्यवस्था करने से लगाया। इस तरह यहाँ वे विधायिका शब्द को एक बिलकुल भिन्न अर्थ दे देते हैं। ऐसी भ्रान्तियाँ अंशतः तो इसलिए भी होती हैं क्योंकि इन संस्थाओं में कार्यरत कर्मचारियों की भूमिकाएँ अमूर्त शब्दों में बताई जाती हैं:

प्रश्नः कार्यपालिका में?

उत्तरः नगर पंचायत।

प्रश्नः और...

उत्तरः —

प्रश्नः तुम प्रधानमंत्री को कहाँ रखोगे – विधायिका में या कार्यपालिका में?

उत्तरः विधायिका और कार्यपालिका में।

प्रश्नः दोनों में...?

उत्तरः हाँ।

प्रश्नः कार्यपालिका के कामों में तुम क्या शामिल करते हो?

उत्तरः वे व्यवस्था करते हैं।

---

59. एक ग्रामीण माध्यमिक शाला के बच्चों से चर्चा।

प्रश्नः कौन करता है?

उत्तरः प्रधानमंत्री को व्यवस्था करने के लिए चुना जाता है।

प्रश्नः किस प्रकार की चीज़ों की व्यवस्था?

उत्तरः जैसे...कोई शहर है...तो उसके लिए चीज़ों की व्यवस्था करना।[59]

हमने अपनी चर्चा के लिए जिन विशेष शब्दों को चुना उन्हें देखने पर यह समझा जा सकता है कि विद्यार्थियों को किस तरह की समस्याएँ होती हैं। कलेक्टर, तहसीलदार, बी.डी.ओ. जैसे शब्द कार्यपालिका से सम्बन्धित हैं यह पहचानना आसान है।[60] उदाहरण के लिए, तहसीलदार क्या करता है या क्या नहीं करता इसका ज्ञान इस पदनाम को किसी श्रेणी में रखने के काम में रुकावट डाल सकता है। शहरी बच्चे ग्रामीण बच्चों की तुलना में इन पदनामों से अधिक अपरिचित थे। लेकिन बी.डी.ओ. का नाम ज़्यादातर ग्रामीण बच्चों के समूहों को भी पता न था। शिक्षक, डाकिया आदि पदनामों को भी वे कार्यपालिका की श्रेणी में रख पाते, यदि वे कार्यपालिका

---

60. उपरोक्त तीन भूमिकाओं में से केवल बी.डी.ओ. की भूमिका को ही पाठ्यपुस्तक में जगह मिली है। "राज्य सरकारें इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए ज़िम्मेदार हैं...। प्रत्येक खण्ड (ब्लॉक) के स्तर पर एक खण्ड समिति काम करती है। समिति के प्रत्येक काम में मदद करने के लिए एक अधिकारी होता है जिसे खण्ड विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.) कहते हैं। बी.डी.ओ. को ग्राम विकास कार्यक्रम के बारे में सब सूचना होती है। उसकी सहायता के लिए कई अधिकारी होते हैं। ये अधिकारी कृषि, सहकारिता, पशु-पालन व शिक्षा के विशेषज्ञ होते हैं। बी.डी.ओ. इन अधिकारियों के काम का निरीक्षण करता है।" (मूले व अन्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ 13.) इन अधिकारियों की इस तरह की चर्चा में कई समस्याएँ हैं। यह वर्णन "ग्रामीण उत्थान व सामुदायिक विकास" नामक अध्याय में आता है तथा इसमें ग्रामीण समुदाय को एक खास तरह से चित्रित किया गया है। यहाँ इस तथ्य पर भी ध्यान नहीं दिया गया कि क्या बच्चे खण्ड परिषद और खण्ड समिति से परिचित हैं या नहीं। ये शब्द "पंचायती राज" नामक अध्याय में सिखाए जाते हैं जो तीन अध्यायों के बाद आता है। तब तक आप सोचते रह जाते हैं कि बी.डी.ओ. खण्ड समिति की 'सहायता' किस तरह से करता है। इस प्रकार, कार्यपालिका की जिस भूमिका का विवरण पुस्तक में दिया गया है वह भी बच्चों के लिए मददगार साबित नहीं होती।

की व्यापक परिभाषा समझ पाते। पर ऐसा नहीं हुआ।

इसी प्रकार बच्चों के लिए उन पदों को वर्गीकृत करना भी कठिन था जो उन कार्यों का वर्णन करते हैं जो दूसरे पदाधिकारियों के कार्यों से मिलते-जुलते हों। मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री जन-प्रतिनिधि भी हैं, अर्थात विधायक व सांसद हैं, अतः वे कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों का हिस्सा हैं। परन्तु उनकी इस दोहरी भूमिका को पहचानने में कठिनाई आती है। यह नकारा नहीं जा सकता कि बच्चे कई पारिभाषिक शब्दों को जानते हैं। परन्तु पेचीदा अवधारणाओं को सम्बोधित करते समय वे इस तरह की जानकारी का उपयोग नहीं करते। संस्थाओं का जो वर्गीकरण पाठ्यपुस्तकों में दिया गया है वह बच्चों को उनसे जुड़े अधिकारियों को सही श्रेणी में रखने में मदद नहीं करता:

प्रश्नः विधायक?

उत्तर 1: कार्यपालिका।

उत्तर 2: विधायिका।

प्रश्नः क्यों?

उत्तरः विधायक मंत्री बनाते हैं।

प्रश्नः तो...?

उत्तरः कार्यपालिका।[61]

यह बातचीत तब सही मानी जाती जब समूह यह तर्क करता कि मंत्री सरकार की कार्यपालिका का और विधायक विधायिका का हिस्सा होते हैं। परन्तु इस स्तर का अमूर्तीकरण हाई स्कूल के बच्चे भी नहीं कर पाए। इसी सन्दर्भ में जो दूसरे पारिभाषिक शब्द काम में लिए गए वे थे वकील और पुलिस। प्रत्येक समूह इस बात पर निश्चित था कि सत्र न्यायाधीश या मुख्य न्यायाधीश न्यायपालिका का हिस्सा है। सभी समूहों ने वकीलों को भी न्यायपालिका का हिस्सा बताया। दरअसल वकील शब्द को सूची में रखा

61. एक ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों से चर्चा।

ही यह जाँचने के लिए गया था कि क्या बच्चे उसे न्यायपालिका से अलग कर पाते हैं या नहीं। अतः यह माना जा सकता है कि बच्चे वकीलों को न्यायपालिका से इसलिए जोड़ते हैं क्योंकि वे अदालतों में नज़र आते हैं।

बच्चों के स्पष्टीकरण से यह भी साफ था कि वे भ्रमवश पुलिस को न्यायपालिका का हिस्सा मान रहे हैं। यह भ्रम कुछ तो इसलिए पैदा होता है कि पुलिस ही जाँच करती है और आरोप तय करती है। पुलिस न्यायपालिका के साथ मिलकर काम करती है। अपराध, न्याय व दण्ड ऐसे विचार हैं जो बच्चे न्यायपालिका से जोड़कर देखते हैं और पुलिस व वकील न्यायपालिका के कार्य के लिए आवश्यक माने जाते हैं। बच्चे ऐसा नहीं सोचते कि केवल कानून तथा व्यवस्था बनाए रखना ही पुलिस का एकमात्र काम है।

अधिकारियों और संस्थाओं को सरकार के विभिन्न अंगों में वर्गीकृत करने में बच्चों को जो कठिनाई आती है वह इसलिए भी हो सकती है क्योंकि पाठ्यपुस्तकें केवल शीर्षस्थ संस्थाओं या व्यक्तियों का ही उल्लेख करती हैं। इसके अलावा वे इस बात पर भी चुप्पी लगाए रखती हैं कि ये व्यक्ति किस तरह के लोगों से सम्पर्क-संवाद करते हैं। यह बात कार्यपालिका के सन्दर्भ में खास तौर से लागू होती है। पाठ्यपुस्तकों में दी जाने वाली जानकारी का चयन सम्भवतः इस धारणा से किया जाता है कि उनमें शामिल संस्थाओं का वर्णन संविधान के अनुरूप होना चाहिए, ना कि बच्चे द्वारा अनुभव किए गए यर्थाथ के अनुरूप।

यहाँ यह जानना रोचक होगा कि बच्चे स्थानीय व उच्चतर स्तर के पदाधिकारियों की आपसी अन्तरक्रिया का वर्णन कैसे करते हैं। वे विभिन्न कार्यों को व्यक्तिगत नज़रियों के माध्यम से देखते हैं, अक्सर उन भूमिकाओं के रूप में जो वे अदा करते हैं, जैसे वित्तीय सहायता देना और/या प्रस्तावों का अनुमोदन करनाः

प्रश्नः मान लो यहाँ सड़क बनानी हो। तो यह कौन करेगा?

उत्तरः वे बना देंगे।

प्रश्नः कौन?

उत्तरः वे जो जीते थे।

प्रश्नः कैसे?

उत्तरः पैसे उपलब्ध करवाएँगे और बना देंगे।

प्रश्नः कौन?

उत्तरः सज्जन सिंह वर्मा (स्थानीय विधायक का नाम) बनाएँगे।

प्रश्नः उनके पास पैसा कहाँ से आएगा?

उत्तरः और आगे से...सरकार देती है।

प्रश्नः यह सरकार कौन है जो और आगे है?

प्रश्नः यह किसकी सरकार है?

उत्तरः —

प्रश्नः सज्जन सिंह वर्मा किस सरकार में हैं?

उत्तर —

प्रश्नः "और आगे" से तुम्हारा क्या मतलब है?

उत्तरः यह दिल्ली से आएगा।

प्रश्नः वे दिल्ली से पैसा क्यों देंगे?

उत्तरः सड़क बनाने के लिए।[62]

स्थानीय क्षेत्र की पहचान साफ तौर पर की जाती है और शेष सब 'आगे' या दूर है, जहाँ से वित्त की व्यवस्था की जाती है। यह धारणा पाठ्यपुस्तक से नहीं मिली है बल्कि वास्तविक घटनाओं से निथारी गई है। ऐसी स्थितियों में हम पाते हैं कि बच्चे वित्त उपलब्ध करवाने की भूमिका को किसी विभाग या मंत्रालय से नहीं जोड़ते। हमने 'आगे' की उनकी व्याख्या पर प्रश्न उठाया। उनके अनुसार 'आगे' सरकार है जिससे पैसा लेना होगा। परन्तु अगर जन प्रतिनिधि स्वयं उसी सरकार का हिस्सा हो तो क्या होगा? इस प्रश्न के जवाब में वे चुप रहे, और तब उन्होंने समझाया कि यह "आगे

62. एक ग्रामीण माध्यमिक शाला के बच्चों से चर्चा। ठीक ऐसे ही उदाहरण ग्रामीण और शहरी उच्च माध्यमिक स्कूलों के समूहों से चर्चा में भी मिले।

सरकार" दिल्ली में है।

पर कुछ बच्चे अपने ही इस स्पष्टीकरण से सन्तुष्ट नहीं थे। पदक्रम की व्यवस्था में उन्होंने विधायक व मुख्यमंत्री की महत्वपूर्ण भूमिकाओं की पहचान की। उन्होंने बताया कि मुख्यमंत्री अपने इलाके के लिए आवश्यक राशि प्रधानमंत्री से लाता है, जिसे मंत्रियों में बाँट दिया जाता है ताकि वे जनता की समस्याएँ सुलझा सकें:

प्रश्नः अब सरकार बन गई है। वह क्या-क्या करती है? या कोई भी सरकार...?

उत्तर 1: शहरों का विकास करती है।

उत्तर 2: पानी, बिजली, किसानों को सुविधाएँ देती है।

प्रश्नः यह वे कैसे करते हैं?

उत्तरः वे अपनी सारी समस्याएँ देते हैं।

प्रश्नः उन्हें कौन देता है?

उत्तरः जो लोग खड़े हुए थे (चुनाव में)।

प्रश्नः वे किसको देते हैं?

उत्तरः दिग्विजय सिंह पैसे देगा।

प्रश्नः दिग्विजय सिंह सीधे पैसे दे देंगे?

उत्तरः हाँ।

प्रश्नः और...?

उत्तरः और वे काम कर देंगे।

प्रश्नः मान लो टौंक कला में तुम्हें हैण्ड पम्प की ज़रूरत हो। तुम सज्जन सिंह वर्मा से कहते हो। सज्जन सिंह वर्मा दिग्विजय सिंह से कहते हैं। दिग्विजय सिंह सज्जन सिंह वर्मा को पैसे देते हैं। तब वे यहाँ हैण्ड पम्प लगा देंगे। क्या ऐसे होता है?

उत्तरः नहीं।

प्रश्नः तो फिर?

उत्तरः यह प्रधानमंत्री के पास जाएगी।

प्रश्नः प्रधानमंत्री कौन हैं?

उत्तरः अटल बिहारी वाजपेयी।

प्रश्नः तो हमें एक हैण्ड पम्प लगाना है। हम सज्जन सिंह से इसकी माँग करते हैं। सज्जन सिंह दिग्विजय सिंह से माँग करते हैं। दिग्विजय सिंह अटल बिहारी वाजपेयी से यह माँग करेंगे।

उत्तरः —

प्रश्नः तरीका क्या है?

उत्तरः प्रधानमंत्री इसे सीधे दिग्विजय सिंह को देंगे। अलग-अलग क्षेत्रों के लिए एक तयशुदा राशि होती है। उस क्षेत्र के काम के लिए वह देनी पड़ती है।

प्रश्नः दिग्विजय सिंह का क्षेत्र क्या है?

उत्तरः मध्यप्रदेश।

प्रश्नः क्या इस तरह के दूसरे क्षेत्र भी हैं?

उत्तरः (चुप्पी) नहीं।

प्रश्नः क्षेत्र से तुम क्या समझते हो?

उत्तरः —

प्रश्नः मान लो वह पहुँच जाती है, तो क्या होगा?

उत्तरः वे इसे सरपंच को दे देंगे।

प्रश्नः क्या वह सीधे दी जाएगी?

उत्तरः हाँ।

प्रश्नः सज्जन सिंह वर्मा क्या करेंगे?

---

63. एक ग्रामीण उच्च माध्यमिक स्कूल के बच्चों के साथ चर्चा।

उत्तर 1: मुख्यमंत्री सज्जन सिंह वर्मा को देंगे। सज्जन सिंह सरपंच को देंगे।

उत्तर 2: सज्जन सिंह गाँव की समस्याएँ देखेंगे और पैसा पंचायत को दे देंगे और वे काम कर देंगे।[63]

बच्चों ने मध्यप्रदेश के राज्य को एक क्षेत्र के रूप में पहचाना, पर वे किसी अन्य राज्य की पहचान नहीं कर पाए। उनका मानना था कि विभिन्न परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक राशि चयनित जन-प्रतिनिधियों के मार्फत पंचायत में पहुँचती है। यहाँ जो वर्णन किया गया है वह कमोबेश व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है। इन उदाहरणों में गौर करने लायक तथ्य यह भी है कि ये उच्च माध्यमिक स्कूलों के छात्रों ने पेश किए थे। उन्होंने कोई कारण बताने की भी कोशिश की, जैसे कोई क्षेत्र विशेष पदक्रम के विभिन्न स्तरों में भिन्न-भिन्न सत्ताओं के तहत आता है।

इस भाग के अन्त में हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सरकार के विभिन्न अंगों के वर्णन के लिए जो ढाँचा काम में लिया जाता है उसे छात्र साफ-साफ नहीं समझ पाते हैं। इसका आंशिक कारण यह हो सकता है कि पाठ्यपुस्तकें केवल उच्चस्थ संस्थाओं और अधिकारियों का वर्णन करती हैं और स्थानीय संस्थाओं और अधिकारियों को छोड़ देती हैं। ऐसे में बच्चे सरकार के वास्तविक कामकाज को अपने व्यक्तिगत तरीकों से समझने की कोशिश करते हैं।

3. निष्कर्ष एवं विकल्प

सरकार को फिर से परिभाषित करना

बच्चों के मन में सरकार की जो प्रमुख छवि है वह इस समझ पर आधारित है कि सत्ता कुछ ताकतवर व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होती है जिनसे परोपकारी होने की उम्मीद रखी जाती है। सरकार से जुड़ी संस्थाओं और व्यक्तियों तक पहुँच और उनके कामकाज को व्यक्तिगत जान-पहचान और पदक्रम के मार्फत होने वाली चीज़ें माना जाता है। बच्चे अपने आस-पास के माहौल से जो विचार और छवियाँ हासिल करते हैं उनसे वे यह भी समझ लेते हैं कि ये संस्थाएँ और व्यक्ति अक्सर अपना कार्य करने में असफल रहते हैं। पाठ्यपुस्तकों के आदर्श और राजनैतिक जगत् की वास्तविक छवियाँ अक्सर एक-दूसरे से पूरी तरह मेल नहीं खातीं। लोकतंत्र के भावी नागरिक बनाने का दावा करने वाली पुस्तकों के ज़रिए पढ़ाने/सीखने से उभरने वाला यह नतीजा व्याकुल करता है।

रटने का आग्रह

स्कूलों की समसामयिक शिक्षण विधि आम तौर पर बच्चों का मूल्यांकन केवल उनकी स्मरण शक्ति के आधार पर करती है। बच्चों से हुई चर्चाओं में हमने पाया कि माध्यमिक स्तर के छात्रों की याददाश्त उच्च माध्यमिक स्कूल समूहों की तुलना में बेहतर थी। परन्तु जब विचारों को लागू करने को कहा जाता तो वे पूरी तरह चकरा जाते। लगता कि इसमें उनकी रुचि

ही नहीं है। परन्तु इस मामले में उच्च माध्यमिक स्कूल समूहों में एक अलग तरह की क्षमता नज़र आई। अक्सर माध्यमिक स्तर के समूहों को विचारों को लागू कर देखने की ज़रूरत तक नहीं समझ आती और न ही उसका फायदा नज़र आता है। जहाँ तक जिज्ञासा और उत्प्रेरणा का सवाल था, दोनों समूह एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न थे।

उच्च माध्यमिक स्कूलों के समूहों के प्रदर्शन को मिलाकर देखा जाए तो ऐसा नहीं लगा कि अवधारणाओं के दोहराव से कोई सुधार हुआ हो। परन्तु वे अपने आसपास की राजनैतिक दुनिया के प्रति अधिक सजग थे, उसमें उनकी रुचि थी। वे जब प्रक्रियाओं को समझाने के लिए जूझते तो अक्सर यह झलकता कि वे वास्तविक घटनाओं को देख-समझकर बोल रहे हैं।

ग्रामीण और शहरी समूह

शहरी माध्यमिक शालाओं के समूहों की तुलना ग्रामीण माध्यमिक शालाओं के समूहों से करने पर एक मामले में दोनों में भारी अन्तर नज़र आया। यह स्पष्ट था कि ग्रामीण बच्चों को आम जीवन में राजनीति को जानने-देखने के ज़्यादा अवसर मिले थे। परन्तु दूसरी तरफ शहरी समूहों के बच्चों को राजनैतिक दलों तथा कानून सम्बन्धी विचारों की जानकारी बेहतर थी। हाँ, ग्रामीण क्षेत्रों के प्रशासकीय ढाँचों से जुड़ी अवधारणाओं के बारे में वे अनिश्चित थे। ग्रामीण माध्यमिक शालाओं के बच्चे जब तक उच्च माध्यमिक स्कूलों में पहुँचते हैं वे इन विचारों से परिचित हो जाते हैं। उच्च माध्यमिक स्कूल स्तर के कम से कम कुछ शहरी बच्चे राजनीति के विषय पर कटु व उदासीन हो जाते हैं, जबकि उनके ग्रामीण साथी राजनैतिक प्रश्नों में सक्रिय रुचि दर्शाते हैं।

आदर्श और सच्चाई में फासला

इस अध्ययन में एक बेहद महत्वपूर्ण सवाल यह है कि बच्चे वास्तविक राजनैतिक जगत् और पाठ्यपुस्तकों से जो विचार पाते हैं, क्या वे एक-दूसरे की पुष्टि करते हैं। यदि उत्तर हाँ है, तो यह कैसे होता है। हमारी

छानबीन से पता चलता है कि चुनाव जैसी अवधारणा के सन्दर्भ में पाठ्यपुस्तकें उन छवियों के लिए स्थान ही उपलब्ध नहीं करवातीं जो बच्चे वास्तविक घटनाओं से प्राप्त करते हैं। ऐसे में वे बच्चों को इन छवियों की पुष्टि करने व उन्हें ठोस रूप देने में मदद नहीं करतीं। अतः हमें लगता है कि पाठ्यपुस्तकों में अवधारणा सम्बन्धी जो ज्ञान उपलब्ध करवाया जाता है, उसके साथ-साथ उन राजनैतिक प्रक्रियाओं की छवि भी चित्रित की जानी चाहिए जो बच्चों के परिवेश में वास्तव में घटती हैं।

सरकार के गठन व कार्य तथा कानून जैसे पेचीदा अवधारणा क्षेत्रों में विविध स्रोतों से ली गई जानकारी के हिस्से अक्सर आपस में विरोधाभासी होते हैं। उदाहरण के लिए, पाठ्यपुस्तकें ज़ोर देकर कहती हैं कि सरकार से जुड़ी संस्थाएँ और व्यक्ति लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से काम करते हैं। परन्तु बच्चे अपने आसपास की दुनिया को देखकर जो सीखते हैं वह काफी भिन्न होता है। वे सीखते हैं कि ये संस्थाएँ सोपानक्रमिक प्रक्रियाएँ अपनाती हैं, और जो लोग इन प्रक्रियाओं के ज़रिए कार्य करते हैं उनका आचरण व्यक्तिपरक होता है। पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार के विरोधाभासों की पहचान कर उन पर सावधानीपूर्वक चर्चा कर सकती हैं, ताकि आदर्श और वास्तविकता के बीच मौजूद तनाव को देखा जा सके।

इस सन्दर्भ में पाठ्यपुस्तकों की असफलता को संक्षेप में निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

यह स्पष्ट नज़र आता है कि पाठ्यपुस्तकें अपने स्वभाव में लाघव हैं तथा संविधान केन्द्रित या कानूनवादी हैं। वे बच्चों के अनुभवों से सीखे विचारों और नज़रियों का विश्लेषण कर उन्हें अपनी कानूनवादी रूपरेखा में शामिल करने में असफल रहती हैं। इसी रूपरेखा से चिपके रहने के कारण पाठ्यपुस्तकें 'राजनीति' को नागरिक शास्त्र शिक्षण से पूरी तरह बाहर रखने में सफल होती हैं।

मौजूदा पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न संस्थाओं के बारे में तथ्यात्मक जानकारी देने पर ज़ोर है। लेकिन इस जानकारी के बावजूद बच्चे विभिन्न अवधारणाओं

के पारस्परिक सम्बन्धों को अक्सर पहचान नहीं पाते। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पाठ्यपुस्तकों में इन अवधारणाओं की ठोस छवि प्रस्तुत करने के लिए वास्तविक राजनैतिक जगत् के उदाहरणों का अभाव है। कक्षाओं में सार्थक चर्चा से बच्चे किताबी अवधारणाओं को समाजीकरण के दौरान सीखे गए अपने विचारों से जोड़ सकते हैं। इस तरह यह चर्चा दो-तरफा संवाद बन सकती है।

नागरिक शास्त्र का विषय ऐसा है जिसमें बच्चों के रोज़मर्रा के ज्ञान का उपयोग करने की अनन्त सम्भावनाएँ हैं। परन्तु पाठ्यपुस्तकें केवल कायदे-कानून का वर्णन करने पर ज़ोर देती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि जो जानकारी वे देती हैं वह आंशिक और एक-तरफा है। यह सम्भव है कि राजनैतिक संस्थाओं और उनके कामकाज की आधी-अधूरी जानकारी देने पर यह ज़ोर किन्हीं पूर्वाग्रहों के चलते हो, जिनकी चर्चा समाजशास्त्रियों ने की है।

यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि हमने बच्चों से जो चर्चाएँ कीं वे ऐसी परिस्थितियों में की गईं जो उपस्थित परिस्थितियों में 'श्रेष्ठतम' थीं। और इसी प्रकार हमने नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों की जो समस्याएँ पहचानीं और जिनका वर्णन किया, वे भी उन छात्रों के साथ चर्चाओं के दौरान उभरीं जिन्हें इस अध्ययन के लिए उपलब्ध हो सके 'श्रेष्ठतम' छात्र कहा जा सकता है। इस तथ्य को मद्देनज़र रखकर यह कहा जा सकता है कि पाठ्यपुस्तकें सरकार के स्वरूप और उसके कामकाज से जुड़ी कई केन्द्रीय अवधारणाओं का वर्णन करने में तथा उन्हें समझाने और सम्प्रेषित करने में असफल रहती हैं।

'राजनीति' क्यों 'असभ्य' बन जाती है

जैसा हम पहले भी बता चुके हैं, पाठ्यपुस्तकें संविधान द्वारा दी गई जानकारी का सहारा लेती हैं। इस तरह वे संविधान से चुने हुए कुछ ज्ञान को प्रस्तुत करती हैं जो इस बात को नज़रअन्दाज़ करता है कि राजनैतिक संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ वास्तव में कैसे काम करती हैं। साथ ही, यह भी सच

है कि पाठ्यपुस्तकें इन संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं के विवरण में कुछ मूल्य और आदर्श शामिल करने की चेष्टा करती हैं।

जब हम उपरोक्त स्थिति को इस तथ्य के साथ जोड़कर देखते हैं कि समूचा बल इस बात पर रहता है कि संस्थाएँ क्या हैं या कैसी होनी चाहिए की जानकारी को बच्चे रट लें, तो हमें शिक्षण विधि की व्यापक असफलता का संकेत मिलता है। यह असफलता मुख्यतः इस तथ्य से जन्मती है कि पाठ्यपुस्तकें उन राजनैतिक मूल्यों और संस्कृति का सामना नहीं करना चाहतीं जो विधिवादी, संवैधानिक रूपरेखा से *बाहर या परे* क्रियाशील होती है। ज़ाहिर है कि यह अनिच्छा उन संस्थाओं तथा अवधारणाओं के सन्दर्भ में होती है जिनका विवरण वे देती हैं। ये राजनैतिक मूल्य व संस्कृति ही वे तत्व हैं जो व्यावहारिक रूप में इन संस्थाओं और अवधारणाओं को प्रभावित कर उन्हें बदल डालते हैं और इस तरह उनके आदर्श रूप की पवित्रता को नष्ट करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि पाठ्यपुस्तकें उस राजनैतिक जगत् से एक तरह की दूरी बनाए रखती हैं जो विधिवादी रूपरेखा के बाहर अस्तित्व में है। इस दूरी का एक कारण शायद विषय की रूपरेखा की समालोचनाओं में देखा जा सकता है। इस अध्ययन की शुरुआत में यह कहा गया था कि ये समालोचनाएँ यह सुझाती हैं कि नागरिक शास्त्र, विभिन्न अवधारणाओं के प्रस्तुतीकरण में, स्वयं को औपनिवेशिक/पुरुषवादी/शहरी/मध्यमवर्गीय नज़रियों के पूर्वाग्रहों से स्वतंत्र नहीं कर पाया है।

इस सन्दर्भ में हमें लगा कि विषय का नाम, जो अँग्रेज़ी में 'सिविक्स' (civics) है, 'सिविल' (civil) शब्द से मिलता-जुलता है जो स्वयं पूर्वाग्रह-युक्त है। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि 'सिविल' शब्द का एक अर्थ 'सभ्य' या 'शिष्ट' भी है। इसके ठीक विपरीत शहरी और ग्रामीण शिक्षकों से हुई हमारी चर्चाओं में उनका जो मत उभरा वह यह था कि आज की राजनीति, जिस प्रकार वह की जाती है, 'असभ्य' (uncivil) है। यह नज़रिया आज के सांसदों, विधायकों तथा पंचायतों के सदस्यों के आचरण के विश्लेषण से उभरा है। यह इस बात के विश्लेषण से भी उभरा है कि

किस तरह यह आचरण पाठ्यपुस्तकों में वर्णित संस्थाओं व प्रक्रियाओं के कामकाज को प्रभावित करता है।

ज़ाहिर है कि पाठ्यपुस्तकें केवल 'आदर्श स्वरूप' की ही चर्चा करती हैं। वे बताती हैं कि ढाँचे व संस्थाएँ कैसे होने चाहिए। परन्तु रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में इन ढाँचों व संस्थाओं की कार्यशैली ताकतवर लोगों के प्रभाव से बदल जाती है। उन्हें यह ताकत कुछ तो अपने राजनैतिक पदों से मिलती है और कुछ सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक ढाँचों से। इसके चलते नागरिक शास्त्र को अपने भीतर राजनीति से जुड़े उन ढाँचों, संस्थाओं व प्रक्रियाओं को भी शामिल करना चाहिए जो विधिवादी रूपरेखा के *बाहर* से दिखाई देती हैं। परन्तु अगर वह ऐसा करने लगे तो यह विषय वैसा नहीं रहेगा जैसा वह आज है, और उसे 'नागरिक शास्त्र' कहना कठिन हो जाएगा।

विकल्प की ओर

अब हम उन विकल्पों की जाँच करेंगे जो राजनैतिक संस्थाओं के कामकाज से जुड़ी विभिन्न अमूर्त अवधारणाओं को पढ़ाने के सन्दर्भ में हमारे सामने मौजूद हैं।[64] यह पहले ही बताया जा चुका है कि पाठ्यपुस्तकों के वर्णन से न केवल वर्णित संस्थाएँ दूर बनी रहती हैं, बल्कि उनके कामकाज की जो सैद्धान्तिक समझ बननी चाहिए वह भी पेचीदा ही रहती है।[65] बच्चों से कानून तथा बहुमत जैसे विचारों पर हमारी जो चर्चा हुई उससे भी ये पेचीदगियाँ उभरीं। वास्तव में माध्यमिक स्कूल स्तर के बच्चे ऐसे मुद्दों से नहीं जूझते, न ही उनके पास संस्थाओं की कोई व्यापक छवियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए, हमने गौर किया कि बच्चों के पास कानून की कोई ठोस

64. यह क्षेत्र एकलव्य के लिए विशेष महत्व का है, जिसके लिए यह अध्ययन किया गया था। इस शोध का विषय सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या विकसित करने के एकलव्य के अनुभव से उभरा था। यहाँ हम नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या की विभिन्न वैकल्पिक सम्भावनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं, परन्तु इन पर व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता होगी।

65. इस सम्बन्ध में अध्याय 1 में "अध्ययन की विधि तथा सैम्पल का चयन" वाले भाग में "ढाँचों की पेचीदगी" तथा "वास्तविक जीवन में ढाँचों का कार्य" देखें।

छवियाँ नहीं हैं। वे उन्हें रीति-रिवाज़ों और नियमों के सन्दर्भ में देखते और समझते हैं। 'कानून की ज़रूरत क्यों है?' जैसे विचार को समझने के लिए जिस स्तर का अमूर्तीकरण चाहिए, वह नियमों, लोकाचारों या प्रथाओं की छवियों की तुलना में असन्तोषजनक लगता है।

राजनैतिक शिक्षा का विन्यास

एक वैकल्पिक रूपरेखा की तलाश शिक्षाविद् जेरोम एस. ब्रूनर के तर्कों पर आधारित की जा सकती है। अपनी पुस्तक *हाउ चिल्ड्रन थिंक एंड लर्न* में डेविड वुड ब्रूनर के विचारों को इस प्रकार रखते हैं:

> ब्रूनर के सिद्धान्त के आधार पर हम बच्चे से जो कुछ सीखने व सामान्य नियम का रूप देने की उम्मीद रखते हैं वह वृहत्, आधारभूत तार्किक ढाँचे नहीं हैं बल्कि स्व-नियंत्रण की प्रक्रियाएँ हैं। उनका तर्क यह है कि, उदाहरण के लिए, स्कूलों में प्रभावी शिक्षण बच्चों को विभिन्न विषयों से सम्बन्धित *सोचने के तौर-तरीकों* से परिचित करवाता है। किसी विषय का 'विन्यास', अर्थात् उसका औपचारिक ढाँचा, तथ्य व 'समाधान' आदि, उस सबका एक पक्ष भर है जिसे बच्चे को सीखने की ज़रूरत होती है। शिक्षण विधियाँ, तथ्य, तिथियाँ, फॉर्मूले आदि तब तक समझ नहीं बनाते या सामान्यीकरण में सहायक नहीं होते जब तक कि बच्चा यह न समझ ले कि सम्बन्धित विषय तथा उसे अभ्यास में लाने व पढ़ाने वाले लोगों के इरादे व उद्देश्य क्या हैं। गणित, इतिहास, भूगोल या किसी भी दूसरे विषय से जुड़े सोचने के तरीके इस प्रकार विकसित हुए हैं कि वे दुनिया को समझने के कुछ खास तरीके बताते हैं। जब तक बच्चा गणितज्ञ, इतिहासकार या भूगोल शास्त्री की भूमिका का *अभ्यास* नहीं करता, यह जान नहीं लेता कि ऐसे लोगों को कौन से मुद्दे उत्साहित करते हैं, उनको कौन सी समस्याएँ रोचक लगती हैं और किन उपकरणों से वे उनको सुलझाते व हल करते हैं, तब तक वह केवल चन्द

> खोखली कलाबाज़ियाँ या विधियाँ ही सीखेगा और उस *विषय-विशेष* की विरासत नहीं पाएगा। बच्चे अनौपचारिक व औपचारिक शैक्षणिक समागमों के दौरान जो कुछ सीखते हैं, उसकी प्रकृति सम्बन्धी ऐसे दृष्टिकोणों को यदि हम स्वीकारते हैं, तब हम यह आशा भी रख सकते हैं कि विभिन्न संस्कृतियों, उप-संस्कृतियों व सामाजिक समूहों के बच्चों के विकसित होने व सीखने के तरीकों में महत्वपूर्ण और दूरगामी अन्तर होते हैं।[66]

अगर हम राजनैतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं को सिखाने के लिए पाठ्यचर्या को पुनर्गठित करना चाहें (न कि नागरिक शास्त्र सिखाने के लिए) तो ऊपर उद्धृत अंश में जो संकेत किया गया है हमें वहाँ से प्रारम्भ करना होगा।[67] परन्तु हमें इस बात पर ध्यान देने की भी ज़रूरत है कि राजनैतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के बारे में बच्चे इस तरह से सीखें कि वे प्राप्त की गई अपनी जानकारी का मूल्यांकन भी कर सकें। दूसरे शब्दों में, हमें इस मुद्दे की सावधानी से पड़ताल करनी होगी कि राजनैतिक शिक्षा का वैकल्पिक विन्यास कैसा हो।

राजनैतिक शास्त्र के अधिकांश विशेषज्ञ सम्भवतः यह तर्क करें कि राजनैतिक विज्ञान का शिक्षण दरअसल सत्ता का अध्ययन है। राजनैतिक समाजीकरण के अध्ययनों में इस विषय पर चर्चा की गई है। उदाहरण के लिए, ग्रीनस्टाइन तथा आल्मण्ड व वेर्बा[68] के अध्ययन इस बात का

66. डेविड वुड, *हाऊ चिल्ड्रन थिंक एंड लर्न*, ब्लैकवेल, मैसाच्यूसेट्स, 1995, पृष्ठ 84 (तिरछे छपे शब्दों पर ज़ोर मूल पाठ में दिया गया है)।

67. यद्यपि यह पैराडाइम (paradigm) आकर्षक लग सकता है परन्तु परम्परागत रूप से ही नागरिक शास्त्र का उपयोग राजनीतिक संस्थाओं के बारे में सिखाने के लिए नहीं किया जाता रहा है। और कई लेखकों ने सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के बारे में नज़रियों का मूल्यांकन करने के लिए 'विषय विशेषज्ञ अभिगम' की बजाय 'नागरिक शास्त्र शिक्षण' का उपयोग किया है। उदाहरण के लिए, गैरी वेहलेज तथा ई. एम. एण्डरसन की पुस्तक *सोश्यल स्टडीज़ करिक्यूलम इन पर्स्पेक्टिवः ए कॉन्सैपच्युअल एनैलिसिस*, प्रैन्टिस हॉल, न्यू जर्सी, 1972, का पहला अध्याय देखें।

68. देखें ऊपर दी गई सन्दर्भ संख्या 7.

मूल्यांकन करने की कोशिश करते हैं कि अपनी मित्र मण्डलियों में, स्कूल में, परिवार तथा मीडिया आदि में सत्ता सम्बन्धों को लेकर बच्चों की जो समझ है वही उनकी राजनैतिक समझ है। इन शोधकर्ताओं का मानना है कि बच्चे जब विभिन्न क्षेत्रों में लोगों के सम्पर्क में आते हैं, उनसे मिलते-जुलते हैं, तो वे अपने अनुभवों और क्षमताओं के आधार पर यह समझने लगते हैं कि इन क्षेत्रों में ताकत किस तरह काम करती है। परन्तु क्या इस समझ को राजनैतिक संस्थाओं से जुड़े अनुभवों के क्षेत्र में रूपान्तरित किया जा सकता है?

यहाँ शायद हमें पैट्रीशिया व्हाईट के अध्ययन को देखना चाहिए जिसमें नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या से जुड़े विचारों को एक दार्शनिक आधार देने की चेष्टा की गई है।[69] व्हाइट की शुरुआती घोषणा है कि वे स्वयं शिक्षा के क्षेत्र में दक्ष नहीं हैं। परन्तु पाठ्यचर्या में राजनैतिक शिक्षण को शामिल करने की सम्भावना तलाशते हुए, तथा राजनैतिक समाजीकरण के नज़रिए से हुए अध्ययनों का उपयोग करते हुए, वे कहती हैं कि "राजनैतिक ज्ञान, राजनैतिक तर्कों व विचारों को शामिल करने में देरी न करने के कई अच्छे कारण हैं। वास्तव में हमें उन्हें बच्चे की औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा में यथाशीघ्र ले आना चाहिए।" [70]

राजनीति की अवधारणा, जिस तरह से वे उसका उपयोग करती हैं, बच्चों के रोज़मर्रा के जीवन में, यानी स्कूल में, परिवार में और हमउम्र साथियों के समूहों आदि में सत्ता-सम्बन्धों की भूमिका की पड़ताल करती है। यह अवधारणा इस बात की भी पड़ताल करती है कि बच्चे सत्ता के इन सम्बन्धों को कैसे अनुभव करते हैं। वे कहती हैं कि "प्राथमिक शाला के बच्चे – जो छह साल से बड़े हैं – निश्चित रूप से राजनैतिक अवधारणाओं व राजनैतिक तर्कों के बीज रूपों का उपयोग करते हैं।" [71]

---

69. पैट्रिशिया व्हाइट, *बियॉन्ड डॉमिनेशन*, रुटलेज, लन्दन, 1983.

70. उपरोक्त, पृष्ठ 104.

71. उपरोक्त, पृष्ठ 110.

कक्षाओं में राजनैतिक विचारों पर बातचीत करने पर व्हाईट जो बल देती हैं यद्यपि वह उचित लगता है, तथापि हम आश्वस्त नहीं हैं कि राजनैतिक संस्थाओं के सन्दर्भ में इतनी छोटी उम्र में इनकी सार्थक चर्चा की जा सकती है। दरअसल लोकतंत्र की राजनैतिक संस्थाओं के कामकाज को देखते समय व्हाइट स्वयं कहती हैं कि इन विचारों को सिखाना आसान नहीं है। उनके शब्दों में, "समस्या यह है कि बहुमत द्वारा वोट की प्रणाली, जो लोकतंत्र में निर्णय प्रक्रिया में अपरिहार्य है, दूसरों पर सत्ता जमाने पर आधारित है। इससे जो मुद्दे उठते हैं वे राजनैतिक शिक्षण के किसी भी कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान पर रखे जाने चाहिए... वयस्क छात्रों के साथ भी बहुमत मतदान पर हुई मेरी कोशिशें मुझे बताती हैं कि शिक्षकों को इस समस्या को समझाने में बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, खासकर यह समझाने में कि यह मुद्दा सत्ता तथा भ्रातृभाव से जुड़ा हुआ है।" [72]

हमारे मत में, हमें यह जानने की ज़रूरत है कि राजनैतिक शिक्षण में किस चीज़ को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और संस्थाओं का विश्लेषण कैसे किया जाना चाहिए। हम पहले ही कह चुके हैं कि कानून तथा बहुमत जैसे अमूर्त विचारों को समझना बच्चों के लिए आसान नहीं है। व्हाइट स्वयं भी कहती हैं कि "मूल सिद्धान्तों एवं मूलभूत मान्यताओं तथा संस्थाओं के बीच अन्तर स्पष्ट करना बेहद आवश्यक है।" [73] मूल सिद्धान्तों में व्हाइट "मूल्य के रूप में भ्रातृभाव", "न्याय", "सत्ता का विचार तथा व्यक्ति के साथ उसका रिश्ता" आदि को शामिल करती हैं।[74] उनके अनुसार:

> जब तक कानून, भ्रातृभाव, तथा परोपकारिता जैसे बिलकुल भिन्न हैसियत वाले मूल्यों को ब्रिटिश संसद, अमरीकी कांग्रेस, जर्मन बुन्डेस्टाग जैसी संस्थाओं से अलग नहीं कर दिया जाता, तब तक यह खतरा बना रहेगा कि छात्र इन संस्थाओं *को ही* लोकतंत्र मान लें। उदाहरण के लिए, जिन समाजों में एक-व्यक्ति,

72. उपरोक्त, पृष्ठ 107.

73. उपरोक्त, पृष्ठ 105.

74. उपरोक्त, पृष्ठ 105-06.

> एक-मत के आधार पर गठित संसद है, जहाँ निर्णय प्रक्रिया बहुमत पर आधारित है, और जहाँ बिना न्यायिक प्रक्रिया के बन्दी नहीं बनाया जा सकता है, उन्हें लोकतांत्रिक मान लिया जाएगा तथा जिन समाजों की व्यवस्थाएँ भिन्न हैं उन्हें लोकतंत्र के बाहर रख दिया जाएगा। सम्भावना यह भी है कि यदि लोग संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं के समूह को ही लोकतंत्र मानने लगें, तो वे यह सोचेंगे कि "अपने समाज को अधिक लोकतांत्रिक बनाने" का मतलब है इन संस्थाओं को कायम रखना या और मज़बूत बनाना।[75]

संस्थाओं पर विचार करते समय व्हाइट कहती हैं कि "विद्यार्थियों को उन व्यापक संस्थागत ढाँचों पर सोचना होगा जिनमें लोकतांत्रिक सिद्धान्त निहित हैं।" उदाहरण के रूप में वे मुहल्ला समूह, कार्यस्थल का लोकतंत्रीकरण तथा राष्ट्रीय मंच के नाम सुझाती हैं। यह जानना महत्वपूर्ण है कि इस सन्दर्भ में जो पेचीदगियाँ प्रस्तुत होंगी उनका भी वे खुलासा करती हैं। इस तरह वे राजनैतिक शिक्षण की एक ऐसी योजना की बात करती हैं "जो केवल सरकार व संस्था प्रणालियों सम्बन्धी तथ्य मात्र प्रस्तुत नहीं करेगी...।"[76] हम देख सकते हैं कि जो लोग राजनैतिक समाजीकरण के पक्षधर हैं उनके लिए भी राजनैतिक संस्थाओं के क्षेत्र से परे सोचना एक तरह से कठिन काम हो गया है। कम से कम वे अब तक यह नहीं सुझा पाए हैं कि सत्ता विन्यास का उपयोग कर एक सार्थक पाठ्यचर्या किस प्रकार विकसित की जाए।

समसामयिक राजनैतिक संस्थाएँ

पाठ्यपुस्तकों का एक दूसरा मार्ग यह भी हो सकता है कि वे संविधान में दिए गए विचारों की पृष्ठभूमि में आज़ादी के बाद भारत में उभरी राजनैतिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली के विश्लेषण को प्रोत्साहन दें।

---

75. उपरोक्त, पृष्ठ 105 (तिरछे छपे शब्दों पर ज़ोर लेखक ने दिया है)।

76. उपरोक्त, पृष्ठ 107.

नागरिक शास्त्र की मौजूदा पाठ्यपुस्तकें बच्चों की स्मरण शक्ति को ही प्रोत्साहित करती हैं। पाठ्यचर्या की कानूनवादी रूपरेखा विषय को अधिक खोलने की सम्भावना नहीं छोड़ती। परन्तु यदि इस रूपरेखा को बदल दिया जाए तो वह दूसरे कौशलों के उपयोग को प्रोत्साहित कर सकती है, जैसे विश्लेषणात्मक सोच, ठोस या काल्पनिक स्थितियों में अवधारणाओं को लागू करना, बहस शुरू करना तथा दूसरों के विचारों का मूल्यांकन करना। हमें लगता है कि यदि बच्चे इन कौशलों का उपयोग करें, उन्हें विकसित करें तो वे किताबों में बताई गई अवधारणाओं व विचारों को बेहतर तरीके से समझ सकेंगे। साथ ही वे यह भी समझ सकेंगे कि पाठ्यपुस्तकों या उन जैसे दूसरे स्रोतों से एकत्रित ज्ञान का आलोचनात्मक विश्लेषण करना महत्वपूर्ण होता है। अतः पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करते वक्त यह ध्यान रखना ज़रूरी होगा कि क्या वह इतनी लचीली है कि उसमें इन अपेक्षाओं को स्थान मिले।

पाठ्यपुस्तकों में एक भारी कमी यह है कि उनमें राज्य व समाज के आपसी रिश्तों पर चर्चा का नितान्त अभाव है। उनका मजमून सरकार के ढाँचों को कुछ इस तरह प्रस्तुत करता है मानो वे समाज से स्वतंत्र हों। इस प्रकार "राज्य की अवधारणा अधिकारियों की सत्ता के विवरण में तब्दील हो जाती है।"[77] आम तौर पर पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न लोगों की शक्तियों का लम्बा-चौड़ा वर्णन मिलता है, परन्तु जिन प्रक्रियाओं व सिद्धान्तों पर सरकारी ढाँचे आधारित हैं उनका विश्लेषण नगण्य होता है। इनमें समाज को "निष्क्रिय व दब्बू" दर्शाया जाता है और जो राजनैतिक संघर्ष व गठजोड़ उसमें होते हैं उन पर खास ध्यान नहीं दिया जाता। "... समाज अपने एजेण्डा में किस प्रकार राज्य का निर्माण करता है, किस प्रकार वह राज्य व समाज के एजेण्डा को नष्ट कर उसे फिर से व्यवस्थित करता है,"[78] इस बात की पूरी तरह उपेक्षा की जाती है।

---

77. नीरा चन्धोक, *स्टेट एंड सिविल सोसाइटीः एक्सप्लोरेशन्स इन पॉलिटिकल थ्योरी*, सेज, नई दिल्ली, 1995.

78. उपरोक्त।

हमें लगता है कि माध्यमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तकों को छवियाँ बनाने तथा कुछ खास विचारों को सुदृढ़ करने की कोशिश करनी चाहिए, जबकि ऊँची कक्षाओं में चर्चा पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।[79] इसी प्रकार सरकार के अंगों के आधार पर सरकार की अवधारणा को सिखाने के चलन को छोड़ देना चाहिए। अगर हम स्थानीय स्तर से प्रारम्भ कर ऊँचे स्तर तक बढ़ते हुए सरकार की छवियाँ गढ़ने की कोशिश करते हैं, तो हम सरकार की संस्थाओं के सन्दर्भ में कई विचारों का सम्प्रेषण कर सकते हैं। यह उपयोगी होगा कि हम बच्चों को बताएँ कि वे कौन से मूलभूत सिद्धान्त व विचार हैं जिन पर संस्थाओं तथा ढाँचों का कामकाज टिका है। विचारों तथा संस्थाओं को कुछ इस प्रकार रखना चाहिए कि वे बच्चों को नागरिकों के रूप में सम्बोधित करें; उन्हें तटस्थ, तथ्यात्मक जानकारी की तरह नहीं परोसा जाना चाहिए।

वास्तव में, संविधान के मूलभूत विचारों तथा सरकार की संस्थाओं के बीच जो कार्य-कारण सम्बन्ध हैं ध्यान उन पर केन्द्रित करना चाहिए। संविधान मूलतः एक राजनैतिक दस्तावेज़ है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय स्वतंत्रता और न्याय के लिए जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ था, और जो आज भी बाकायदा चल रहा है, संविधान उसके एक चरण को प्रस्तुत करता है। उसमें उन लक्ष्यों व उद्देश्यों सम्बन्धी वे वक्तव्य शामिल हैं जो आज़ादी के लिए संघर्ष के दौरान निश्चित किए गए थे। अगर संविधान को केवल औपचारिक विधियों आदि के रूप में ही देखा-पढ़ा जाएगा तो उसकी अर्थ सम्बन्धी इस सारी सम्पन्नता का महत्व ही खो जाएगा। सरकारी संस्थाओं का जो कानूनी ढाँचा है वह तो संविधान का आकार मात्र है।

सम्भव है कि बच्चे संविधान के अर्थ व उसके महत्व को पूरी तरह न समझ

---

79. मौजूदा पाठ्यपुस्तक लेखकों का एक विचित्र तर्क है। कक्षा 3 में ही बच्चों का राजनैतिक संस्थाओं से परिचय करवा दिया जाता है। तब अगली कक्षाओं में क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा अवधारणाएँ जोड़ दी जाती हैं। उदाहरण के लिए, तीसरी कक्षा में बच्चों को पंचायतों का अध्ययन करवाया जाता है। छठी कक्षा में वे फिर से इनके बारे में पढ़ते हैं, और नवीं कक्षा में एक बार फिर।

पाएँ, परन्तु हमारे राजनैतिक जीवन को दिशा देने में संविधान का जो महत्व है उसका कुछ आभास तो हम बच्चों को करा ही सकते हैं। इसी तरह हम उन्हें उन लक्ष्यों व सपनों का आभास भी करा सकते हैं जिन्हें हमारे राष्ट्र के संस्थापकों ने उसमें शामिल किया था। हमें किस दृष्टि से संविधान का अध्ययन करना चाहिए? हमें लगता है कि जिस देश की आशाएँ तथा सम्भावनाएँ संविधान में अंगीभूत हैं उसके नागरिकों के नज़रिए से ही संविधान का अध्ययन किया जाना चाहिए। इन मूल्यों का सबसे स्पष्ट वर्णन संविधान के आमुख में तथा अधिकारों व कर्त्तव्यों सम्बन्धी अध्यायों में मिलता है।

संस्थाओं के कार्य, जैसे नियमादि बनाना, उन्हें लागू करना तथा विवादों का नियमन व निपटारा आदि करना, परस्पर जुड़े कार्य हैं, जो कभी सरकार के किसी खास अंग द्वारा किए जाते हैं और कभी किसी एक अधिकारी या संस्था के कार्यों में मिला दिए जाते हैं। लोकतांत्रिक सरकार का सिद्धान्त कहता है कि कानून लोक प्रतिनिधित्व करने वाली ऐसी संस्थाओं द्वारा बनाए जाने चाहिए जो जनता के प्रति जवाबदेह हों। किन्हीं खास विधियों को अपनाने के कारणों को – उदाहरण के लिए कानून निर्माण की विधि को – भी लोकतांत्रिक नियंत्रण की आवश्यकता के सन्दर्भ में समझाया जा सकता है। शायद इससे उस चीज़ में कुछ सार्थकता नज़र आएगी जो अन्यथा एक निरर्थक परिपाटी लग सकती है। विभिन्न संस्थाओं को उनके पारस्परिक सह-सम्बन्धों के सन्दर्भ में समझना ज़रूरी है। यह समझना ज़रूरी है कि सभी संस्थाएँ मिलजुलकर संविधान द्वारा परिभाषित व्यापक दायित्वों का निर्वहन करती हैं। इससे वह बिन्दु उपलब्ध होता है जिससे संस्थाओं की सफलता या असफलता को जाँचा जा सकता है।

दरकार यह है कि पाठ्यपुस्तकों के मजमून को व्यापक स्वीकृति मिले। यद्यपि हमें स्वयं को राज-समाज के पारस्परिक सह-सम्बन्ध के बीच रखना अधिक आकर्षक, सैद्धान्तिक रूप से अधिक उचित लगता है, पर यह ध्यान रखना होगा कि यह एक विवादित क्षेत्र है। भारतीय राज्य के स्वरूप की कई तरह से व्याख्या की जा सकती है। अतः यहाँ के राजनैतिक परिदृश्य

की विवेचना में किसी एक राजनैतिक स्थिति के प्रति झुकाव या रुझान का खतरा है। स्थिति तब और भी समस्यात्मक बन जाती है जब भारतीय राज्य के स्वरूप को वर्णित करने वाली पुस्तक स्वयं सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। ऐसी स्थिति में संविधान में लिखे विचारों व उनकी मंशा का सही-सही अनुकरण करने से ही हम विवाद से बच सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि हम न्यूनतम आलोचनात्मक स्थान भी प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें उसे व्यापक स्वीकृति के लिए उन विचारों और बहसों से जोड़ना होगा जिन्हें संविधान में जगह दी गई है।

अलक्स एम. जॉर्ज

अलक्स एम. जॉर्ज की स्कूली पढ़ाई केरल में हुई। शिक्षा एवं कानून का समाजशास्त्र उनकी रुचि के खास क्षेत्र हैं। एकलव्य के साथ काम करने के अलावा उन्होंने अन्य कई संस्थाओं में काम किया है। एन.सी.ई.आर.टी. की राजनीति शास्त्र की नई पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने में भी वे शामिल रहे हैं। आजकल स्वतंत्र शोधकर्ता के रूप में काम कर रहे हैं।

एकलव्य

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल में व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य ऐसी शिक्षा का विकास करना है जो बच्चे से व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो; जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया है कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी, रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। किताबें तथा पत्रिकाएँ इन साधनों का एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका *चकमक* के अलावा *स्रोत* (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स) तथा *शैक्षणिक संदर्भ* (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान एवं बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मद्दों से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्रियाँ आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्य प्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, देवास, इन्दौर, उज्जैन, शाहपुर (बैतूल) व परासिया (छिन्दवाड़ा) में स्थित कार्यालयों के माध्यम से कार्यरत है।

इस किताब की सामग्री एवं सज्जा पर आपके सुझावों का स्वागत है। इससे आगामी किताबों को अधिक आकर्षक, रुचिकर एवं उपयोगी बनाने में हमें मदद मिलेगी।

सम्पर्कः books@eklavya.in

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462016